चन्दामामा
जनवरी १९६८
75 P

Chandamama
Press
VADAPALANI
MADRAS-26
OFFERS YOU...
FINEST PRINTING.-
Equipped with
PHOTO GRAVURE
KLIMSCH CAMERA
VARIO KLISCHOGRAPH-
-BLOCK MAKING
and a
host of Others....

चन्दामामा

जनवरी १९६८

कोलगेट से दिनभर दुर्गंधमय श्वास से मुक्त रहिए और दन्त-क्षय को रोकिए !

क्योंकि : एक ही बार ब्रश करने से कोलगेट डेन्टल क्रीम ८५ प्रतिशत दुर्गन्ध प्रेरक और दंत क्षयकारी जीवाणुओंको दूर कर देता है।

वैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध हो गया है कि कोलगेट १० में से ७ मामलों में दुर्गन्धमय सांस को तत्काल दूर कर देता है और खाना खाने के तुरन्त बाद कोलगेट विधि से ब्रश करने पर दन्त चिकित्सा के समस्त इतिहास में पहले के किसी भी समय की तुलना में अधिक व्यक्तियों का अधिक दन्त-क्षय दूर होता है। केवल कोलगेट के पास ही यह प्रमाण है।
बच्चे कोलगेट से अपने दांतों को नियमित रूप से ब्रश करने की आदत आसानी से पकड़ लेते हैं क्योंकि इसकी देर तक रहने वाली पिपरमेंट जैसी खुशबू उन्हें प्यारी होती है।

यदि आपको पाउडर पसंद हो तो कोलगेट टूथ पाउडर से भी ये सभी लाभ मिलेंगे ... एक डिब्बा महीनों तक चलता है।

COLGATE
TOOTH POWDER

COLGATE
DENTAL CREAM

नियमित रूप से कोलगेट द्वारा ब्रश कीजिये ताकि इससे आपकी सांस अधिक साफ़ और ताजा तथा दांत अधिक सफ़ेद हों।

...सारी दुनिया में अधिक से अधिक लोग किसी दूसरी तरह के डेंटल क्रीम के बदले कोलगेट ही खरीदते हैं।

FALCON
75
फ़ालकन
பால்கன்
75

अच्छे स्वाद के लिए हमेशा इसतेमाल कीजिए।

लक्ष्मी और जयश्री

केसरी सुगंधी सुपारी

अच्छे दर्जे की सुपारी तथा अन्य स्वादिष्ट वस्तुओं के मिलान से बनाई गई उत्तम दर्जे की सुपारी है।

(मंगलोर में बनाई गई चीज)

३० पुड़ियों को अच्छे आकर्षित डिब्बे में बंद किये हुए तथा साथ में "लक्स" साबून की एक टिकिया भेंट रूप में मिलती है।

Phone P. P. 3104

Telegram Care: **"PAREKH"**

बनानेवाले:

प्रताप कार्पोरेशन

अजीजुद्दीन रोड, मंगलोर (द. भा.)

पो. बॉ. नं. ११७

Manufacturers :

PRATAP CORPORATION

Azizuddin Road, MANGALORE (S. India)

P. B. No. 117

Agents and Distributors wanted! Those who are really Interested apply.

—SADHANA

राम की पसन्द
जन्म दिवस शुभ हो,
राम क्या क्या उपहार मिले किसका उपहार सबसे अच्छा है?

मुझे तो राज का दिया हुआ नुसेकोस प्लास्टिकले बहुत अच्छा लगा है मेरे मम्मी पापा भी इससे बहुत खुश हैं क्योंकि इससे खेलते हुए मैं उन्हें तंग नहीं करता।

उससे खेलने में मेरा मन भी बहुत लगता है ज़रा देखो मैंने क्या क्या बना डाला है।

Introducing
'Kashmir' TOOTH PASTE
'Kashmir'
New
Teeth Cleaning Unit
'Kashmir'
TOOTH PASTE
TOOTH POWDER
and
TOOTH BRUSH

चन्दामामा

संचालक: चक्रपाणी

"चन्दामामा" में प्रकाशित धारावाहिक कहानियाँ विशेषतः पाठकों के लिए मनोरंजक रही हैं और हम उनको निरन्तर देते भी आ रहे हैं।

"पाताल दुर्ग" का धारावाहिक इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है। अगले मास से नया धारावाहिक प्रारम्भ होगा और वह भी निश्चय ही और धारावाहिकों की तरह रोचक होगा।

वर्ष: १९ जनवरी १९६८ अंक: ५

भारत का इतिहास

पानीपत में हरा दिये जाने के बाद, १७७० तक मराठों की हालत पूरी तरह सुधर गई थी। दिल्ली का बादशाह शा आलम द्वितीय, उनके आधीन था। मराठों को भी, अपने प्रभाव में रखने के उद्देश्य से १७७३ में वारेन हेस्टिन्ग्स ने बनारस की सन्धि की थी। परन्तु इस बीच पेशवा माधवराव की मृत्यु हो गई। उसके चाचा रघुनाथराव में अत्यधिक शासन लिप्सा थी। माधव का भाई और उत्तराधिकारी नारायणराव बिल्कुल कमजोर था। पेशवा माधवराव, अपने चाचा रघुनाथराव (रघोबा) को काबू में रख सका। परन्तु युवक नारायणराव ने रघोबा से दुश्मनी ठान ली और उसे कैद में डाल दिया। इससे रघोबा नाराज हो गया। उसने असन्तुष्ट होकर, कुछ सैनिकों को लेकर बलवा कर दिया। ३० अगस्त १७७३ को नारायणराव की, उसके चाचा के सामने ही हत्या कर दी गई।

इसके बाद रघोबा पेशवा हो गया। परन्तु जल्दी ही उसको विरोध का सामना करना पड़ा। पूना के एक शक्तिशाली वर्ग ने, नाना फड़नवीस के नेतृत्व में रघोबा का विरोध प्रारम्भ किया। वह एक ब्राह्मण युवक था। १७७४ में, नारायणराव की पत्नी गंगाबाई के एक बच्चे को जन्म देने के कारण, इस वर्ग को और प्रोत्साहन मिला। उन्होंने उस बच्चे को पेशवा घोषित कर दिया और उसकी ओर से शासन करने के लिए उन्होंने एक वर्ग भी तैयार कर लिया।

रघोबा का भी दबदबा जाता रहा। उसने बम्बई में जाकर अंग्रेजों की

शरण ली। उनकी सहायता माँगी। भारतीयों की आपसी फूट से हमेशा अंग्रेज लाभ उठाते रहे थे, इस बार भी उन्होंने उठाया। सच कहा जाये, तो बम्बई के अंग्रेजों के पूना के शासकों से अच्छे सम्बन्ध थे। पर इस लालच में कि रघोबा की सहायता करने से बम्बई के आसपास के समुद्र तटवर्ती प्रान्त उनके आधीन आयेंगे, उन्होंने उसकी सहायता की। ७ मार्च, १७७५ रघोबा ने सूरत में अंग्रेजों से सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार अंग्रेज २,५०० सैनिक देने के लिए मान गये और उनके खर्च का भार रघोबा पर पड़ा। इसके बदले रघोबा ने अंग्रेजों को साल्सेट बस्सीन दे दिये। भरूच और सूरत से जो आय आती थी, उसमें से भी कुछ हिस्सा अंग्रेजों को देने के लिए मान गया। सन्धि में यह भी तय हुआ कि रघोबा कम्पनी के विरोधियों से सन्धि न करे और जिस किसी से भी मैत्री करे, साथ अंग्रेजों को भी शामिल किया जाये। २७ फरवरी, १७७५ कर्नल कीठिन्ग के नेतृत्व में एक ब्रिटिश सेना की टुकड़ी,

सूरत पहुँची। १८ तारीख को अर्रास मैदान में किटिन्ग और रघोबा की संयुक्त सेना ने पूना की सरकारी सेना से युद्ध किया और उसे परास्त किया।

परन्तु बम्बई की कम्पनी की शाखा को रघोबा से इस प्रकार युद्ध करने की, कलकत्ता के सुप्रीम कोन्सिल ने अनुमति नहीं दी। सूरत की सन्धि का समर्थन करने के लिए वारेन हेस्टिंग्स तो तैयार था परन्तु सुप्रीम कोन्सिल के अधिक सदस्यों ने आपत्ति की। उन्होंने बम्बई कोन्सिल की कार्यवाही को "मूर्खतापूर्ण,

आपत्तिजनक, अनधिकार चेष्टा" कहा। उन्होंने जैसे भी हो, ३१ मई तक कम्पनी की सेनाओं का हटाने का आदेश दिया।

कुछ मास बाद कलकत्ता से कर्नल अप्टन पूना आया और वहाँ की सरकार से उसने सन्धि के लिए बातचीत प्रारम्भ कर दी। १ मार्च १७७६ को, पुरन्धर सन्धि हुई। इससे सूरत की सन्धि रद्द कर दी गई। नई सन्धि के अनुसार साल्सेट और बस्सीन अंग्रेजों को ही मिले। अंग्रेजों के युद्ध के हरजाने के तौर पर पूना की सरकार को १२ लाख रुपये देने पड़े। अंग्रेजों को रघोबा का साथ छोड़ना पड़ा और उससे गुजरात में कोपरगाँव में जाकर रहने के लिए कहा गया और पूना सरकार को, उसे महावार २५,००० रुपये देने के लिए कहा गया।

परन्तु इस सन्धि को अमल में नहीं लाया गया। इसकी शर्तें बम्बई की सरकार को पसन्द न थीं। उन्होंने इस सन्धि को ठुकरा दिया। अप्टन की परवाह न की और उन्होंने रघोबा को शरण दी। पूना की सरकार ने भी सन्धि को कार्यान्वित नहीं किया। १७७७ में नाना फड्नवीस ने एक फ्रेन्च निवासी को पश्चिमी तट के एक बन्दरगाह को देने का वचन दिया। इसके परिणाम स्वरूप बम्बई कोन्सिल को फ्रेन्च के दाँव पेंचों पर सन्देह होने लगा। अंग्रेजों ने फिर युद्ध शुरु करने के लिए ६०० अंग्रेज सैनिक और ३,३०० सिपाहियों को भेजा। ९ जनवरी १७७९ पश्चिमी घाटियों में तालेगाँव के पास मराठी सेना ने इस सेना का मुकाबला किया और इसे हराया।
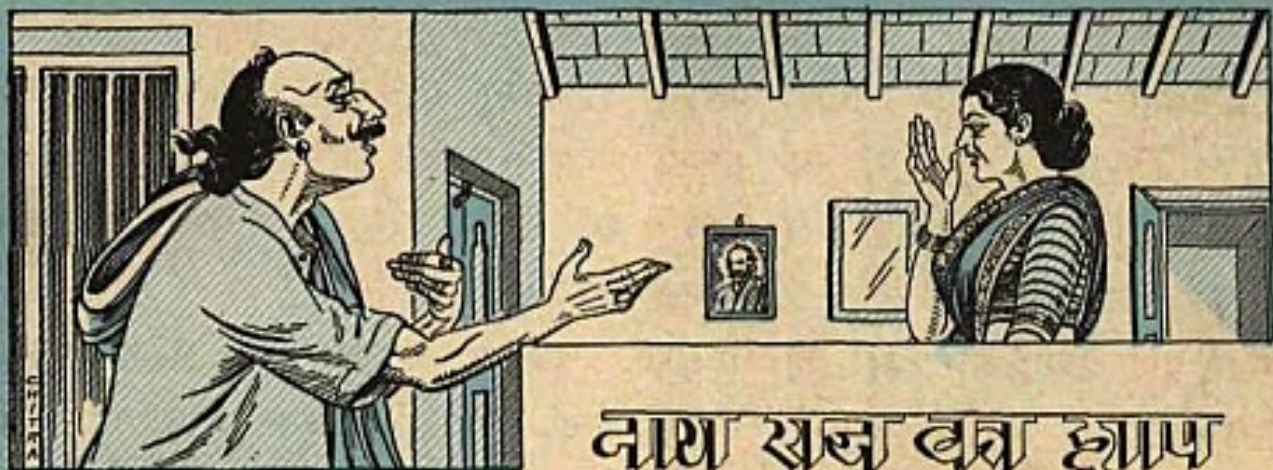
नाग राज का शाप

एक गाँव में एक रईस रहा करता था। जब उसकी असमय में मौत हो गई, तो उसके परिवार में, पत्नी और उसकी लड़की के लिए किसी पुरुष का सहारा न रहा। परन्तु ग्रामाधिकारी उनकी कभी कभी मदद किया करता। उसके भरोसे माँ और लड़की, अपना जीवन निर्वाह करती रहीं। लड़की का नाम वसन्ता था। वसन्ता की शादी का समय आ गया था। वसन्ता बड़ी सुन्दर हो गई थी। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, राजकुमार तक उससे शादी कर सकते थे।

चूँकि सभी बातों पर वे ग्रामाधिकारी पर निर्भर थे, इसलिए माँ ने उससे लड़की के विवाह के बारे में भी कहा।

"वसन्ता की शादी के बारे में तुम कुछ न सोचो। उसके साथ मैं ही शादी कर लूँगा। इसी वजह से ही तो मैं इतने साल इतनी जिम्मेवारी उठाता रहा।" ग्रामाधिकारी ने कहा।

यह सुनते ही माँ की चिन्ता और भी बढ़ी। ग्रामाधिकारी की तब ही तीन पत्नियाँ थीं। वह बूढ़ा हो गया था, उस के साथ जवान वसन्ता का विवाह करके, कैसे उसको चौथी पत्नी बनाया जाये?

जब ग्रामाधिकारी ने वसन्ता से शादी करने का निश्चय कर लिया था, उसके निश्चय को बदल सकनेवाला, उस गाँव में कोई न था? यही नहीं, उनका कोई था भी नहीं, उस हालत में, उसकी कोई मदद नहीं करेगा? इसलिए आधी रात के समय,

विश्वनाथ कौशिक

वसन्ता का माँ, उसको साथ लेकर जरूरी चीज़ों के दो गठ्ठर बनाकर, गाँव छोड़कर, जंगल की ओर चल दी।

जाते जाते जंगल में उनको एक पुराना मन्दिर दिखाई दिया। माँ बेटी ने उसमें कुछ देर आराम करने की ठानी। मन्दिर के पास एक छोटा-सा बगीचा था। उसमें बहुत-से सुगन्धीवाले फूल थे। जब वसन्ता ने उन फूलों को तोड़ना चाहा, तो पौधों में से एक साँप का बचा बाहर निकला। तुरत माँ ने एक पत्थर लेकर उसे मार दिया।

वसन्त ने कुछ फूलों को अपनी वेणी में लगाते हुए पूछा—"माँ, तुमने क्यों उस साँप के बच्चे को मार दिया था?"

वसन्ता अपना गठ्ठर लेकर, जल्दी जल्दी मन्दिर के अन्दर चली गई। माँ भी अपना गठ्ठर लेकर, उसके पीछे मन्दिर में गई। पर वहाँ वसन्ता न थी। पर उसका गठ्ठर पड़ा था। मन्दिर में, पाँच फणोंवाले नाग की मूर्ति थी। यह सोचकर कि कहीं वसन्ता उसके पीछे न छुप गई हो, माँ ने उस मूर्ति के पीछे देखा। परन्तु वसन्ता वहाँ भी न थी।

"बेटी, वसन्ता।" माँ ने दो तीन बार उसे बुलाया।

पर कोई जवाब नहीं मिला।

नाग की मूर्ति से यह बात सुनाई दी—"तुमने मेरे बचे को मार दिया और मैंने तुम्हारी लड़की को अदृश्य कर दिया।"

माँ को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। दुःख हुआ। जिस लड़की के लिए वह दुनियाँ भर के कष्ट उठा रही थी, उसी को वह अपने हाथों खो बैठी थी।

उसने नाग देवता के सामने साष्टान्ग करके कहा—"नागराजा, जो गलती मैंने अनजाने की है, उसके लिए मेरी लड़की को दण्ड मत दो। चाहो, तो मेरे प्राण ले लो। मेरी लड़की की रक्षा करो।" उसने रो रोकर, बार बार यह प्रार्थना की।

"तुम्हारी लड़की अदृश्य हो गई है, पर मरी नहीं है। मेरे मन्दिर के पास से जानेवालों को तुम्हारी लड़की तीन बार बुलायेगी और जो उसकी पुकार सुनकर अन्दर आयेगा, वह उसको, फिर से आकार देगा और उससे विवाह करेगा।" नाग की मूर्ति से ये बातें सुनाई दीं।

उसके बाद, वह दिन में प्रातः, सायं, नाग राज का ध्यान किया करती और बाकी समय, मन्दिर के बाहर, एक पेड़ के नीचे बैठा करती। आसपास के पेड़ों पर जो फल वगैरह लगते, उन्हें खाकर, पेट भर लिया करती।

एक दिन एक लकड़हारा उस तरफ़ आया। मन्दिर के अन्दर से...."ज़रा एक बार अन्दर तो आइये।" वसन्ता की आवाज़ सुनाई पड़ी। लकड़हारा अन्दर गया। फिर बाहर आकर उसने कहा—"कोई भी नहीं है, क्या अजीब बात है।" उसने अपने मन की बात बाहर कह दी।
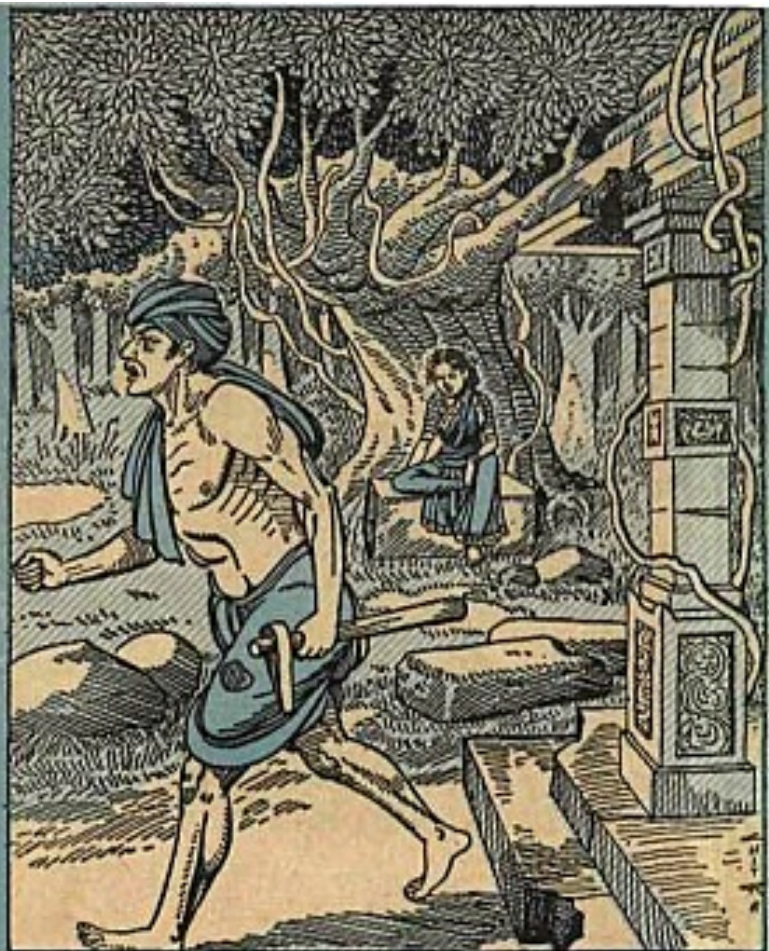
"कोई क्यों नहीं है? उसमें एक मोहिनी पिशाच है।" माँ ने कहा।

इतने में फिर वसन्ता ने कहा—"ज़रा अन्दर आइये।" लकड़हारा यह सुनकर, डरकर भाग गया।

इस प्रकार जंगली लकड़हारे, जंगल में कहीं सिर छुपाने के लिए चोर उस मन्दिर के पास आया करते। उस तरफ़ जब कभी कोई आदमी आता, तो मन्दिर से यह आवाज़ आती और माँ उन्हें डराकर भेज देती।

कुछ दिनी बाद, उस तरफ़ एक राजकुमार आया। उसे भी वसन्ता की पुकार सुनाई दी। वह भी अन्दर गया। जब उसने वहाँ किसी को न देखा, तो उसने मन्दिर की परिक्रमा की। इतने में दुबारा, वसन्ता की आवाज़ सुनाई दी। उसने फिर अन्दर जाकर देखा। अन्दर कोई न था। वह फिर गया और उसने माँ से, जो बैठी बैठी यह सब देख रही थी, पूछा—"कौन बुला रही है?"

"मैंने तो कुछ नहीं सुना।" माँ ने कहा।

इतने में वसन्ता ने तीसरी बार बुलाया। राजकुमार तीसरी बार मन्दिर में गया। उसके साथ माँ भी अन्दर गई। इस बार वसन्ता अन्दर दिखाई दी। वह बेहोश नाग देवता की मूर्ति के सामने पड़ी थी।

राजकुमार ने तुरत उसको उठाया। उसकी सेवा शुश्रुषा की। कुछ देर बाद वसन्ता को होश आया। जब उसने एक अजनबी को देखा, तो वह लजा गई। इतने में उसको अपनी माँ दिखाई दी। "माँ" कहती वह उठी और उसने उसको गले लगा लिया।

फिर माँ ने राजकुमार से पूछा—"तुम्हारा ऋण कैसे चुकाऊँ? तुमने मेरी लड़की को मुझे वापिस दिला दिया है।" फिर उसने अपनी सारी कहानी सुनाई।

सब सुनकर राजकुमार ने कहा—"मैंने आपको आपकी पुत्री दान में दी है और आप मुझे अब कन्या दान दीजिये।" इसके बाद माँ बेटी, उस राजकुमार के साथ उसके नगर गये। वहाँ वसन्ता और और राजकुमार का बड़े वैभव के साथ विवाह हुआ।
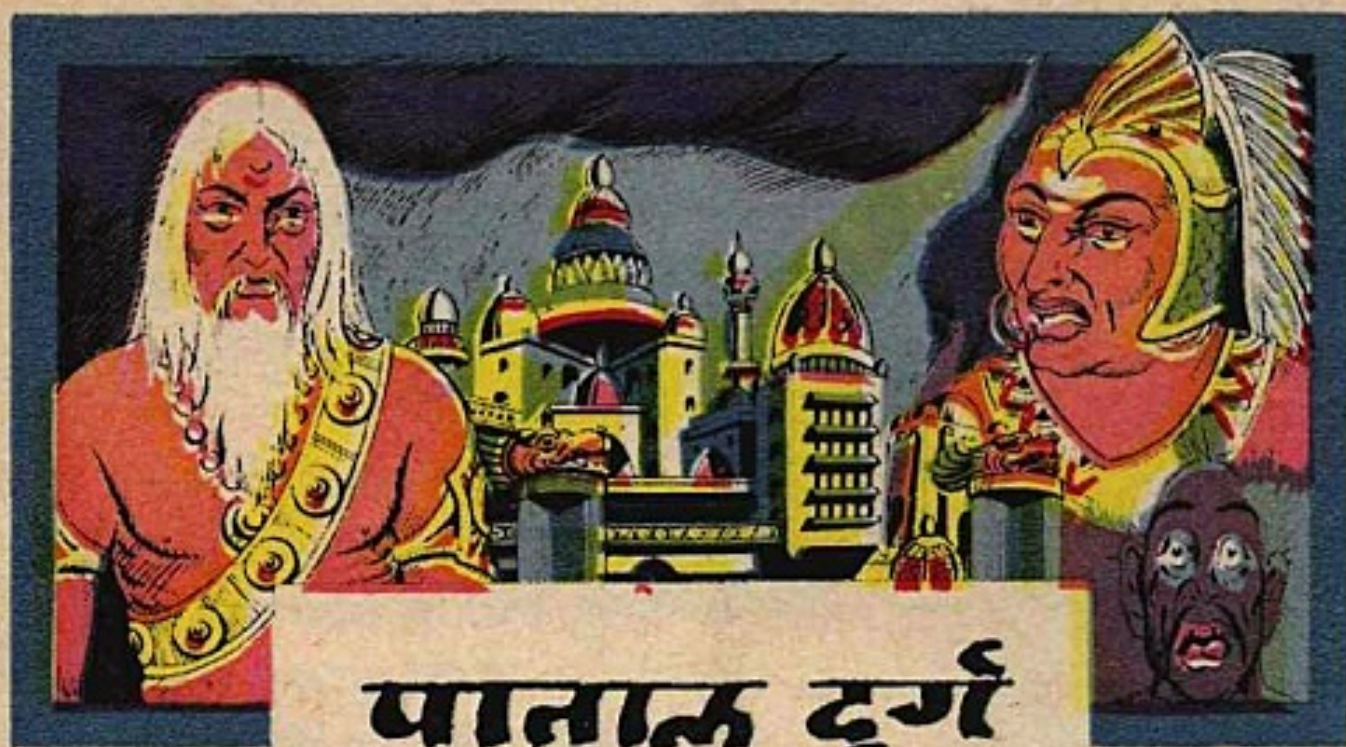
पाताल दुर्ग

[२०]

[राक्षस जब काले गरुड़ को देखकर साष्टाङ्ग कर रहे थे, तो मान्त्रिक ने पहाड़ के सरोवर के जल को पाताल दुर्ग की ओर छोड़ दिया। उस पानी में डूबकर कई राक्षस मर गये। जो बच बचा गये थे, उनके साथ महाकलि सुरन्ग की ओर निकला और उस सुरंग की शशिकान्त और कुम्भीर अपने साथियों के साथ रक्षा कर रहे थे। बाद में—]

सुरन्ग के मार्ग पर आते ही कालशम्बर मान्त्रिक ने कुम्भीर से चिल्लाकर कहा–"कुम्भीर! अब तुम्हारे पाताल दुर्ग का राजा होने का समय आ गया है। तुम्हारे राहु वंशवाले कई पीढ़ियों तक दण्डकारण्य में राज्य कर सकते हैं। केतु वंश के राक्षसों का सर्वनाश हो रहा है।"

मान्त्रिक अभी यह कह ही रहा था कि धूमक ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर, पीछे की ओर मोड़ते हुए कहा–"महाकलि सुरन्ग के रास्ते पास आ रहा है।"

"वह क्या करना चाह रहा है, यह मैं जानता हूँ। आने दो, जब वह पास आये, तो उस पर ये बड़े बड़े पत्थर धकेल देना। एक दो उस तरफ जाकर कुम्भीर

को खबरदार कर दो।" कालशम्बर ने कहा।

मान्त्रिक यह कह रहा था कि महाकलि और उसके कुछ साथी सुरन्ग के पास आये।

"जय कुम्भवती!" कहकर महाकलि ने अपनी गदा से हाथी पर धीमे से मारा। तुरत हाथी पानी में चला गया। इसके साथ वह हाथी भी जिस पर उसके अंगरक्षक थे, आगे बढ़ा। तुरत बड़ा शोर हुआ। मान्त्रिक और उसके मित्र जब उस तरफ गये, जिस तरफ से शोर आया था, तो उन्होंने देखा कि महाकलि हाथी से सुरन्ग के द्वार के पत्थर हटवाकर बाहर आ गया था। उसके पीछे अंगरक्षक का हाथी आया। तुरत सुरन्ग से जोर से शोर करते हुए पानी वह निकला।

कुम्भीर और उसके साथियों द्वारा पकड़े हुए शेर, चीते वगैरह उस पानी को देखकर बिदक उठे। वे उनको वश में कर रहे थे कि महाकलि ने उसे देखकर पूछा—"कुम्भीर! तुम यहाँ क्या कर रहे हो? द्रोही, तुमने ही तो सुरन्ग के द्वार पर पत्थर रखवाये थे।" उसने हाथी उस पर दौड़ाया।

चूँकि कुम्भीर पहिले ही जानता था कि इस प्रकार की परिस्थिति पैदा हो सकती है, उसने अपना शेर महाकलि के हाथी की ओर दौड़ाया। फिर वह "राहु वंश की जय" कहता आगे बढ़ा। उसने अपना भाला निशाना लगाकर महाकलि पर फेंका। पर उसका निशाना चूक गया और वह जाकर हाथी को लगा। इससे हाथी डर गया। महाकलि ने उसे रोकना चाहा। पर वह चिघाड़ता जंगल की ओर भाग गया।

महाकलि के साथी उसके पीछे पीछे गये। कुम्भीर ने अपने साथियों को लेकर शेर के साथ महाकलि का पीछा किया। परन्तु इस बीच शशिकान्त ने महाकलि का रास्ता रोका और उस पर बाण फेंकने लगा।

कालशम्बर मान्त्रिक "शाम्भवी" जोर से चिल्लाता, "उस दुष्ट का नाश करो, मैं आ रहा हूँ।" वह सुरंग से नीचे कूदा और तेजी से महाकलि की ओर दौड़ा। धूमक, सोमक और भद्र आदि भी मान्त्रिक के साथ भागे।

सुरंग की धारा में जो राक्षस बाहर वह आये थे कुम्भीर के लोगों ने उन्हें आसानी से मार दिया। वे तैरते तैरते इतने थक थका गये थे कि वे उनका मुकाबला न कर सके। बाघ और चीतों ने उन पर कूदकर उनको चीर फाड़ दिया।

यह देखकर कि परिस्थिति प्रतिकूल थी महाकलि ने सोचा कि खड़े होकर लड़ने से भाग जाना अच्छा न था। पर कालशम्बर और उसके साथियों ने उसका रास्ता रोक रखा था। "चाहो, तो उसे पहाड़ की ओर जाने दो। अगर
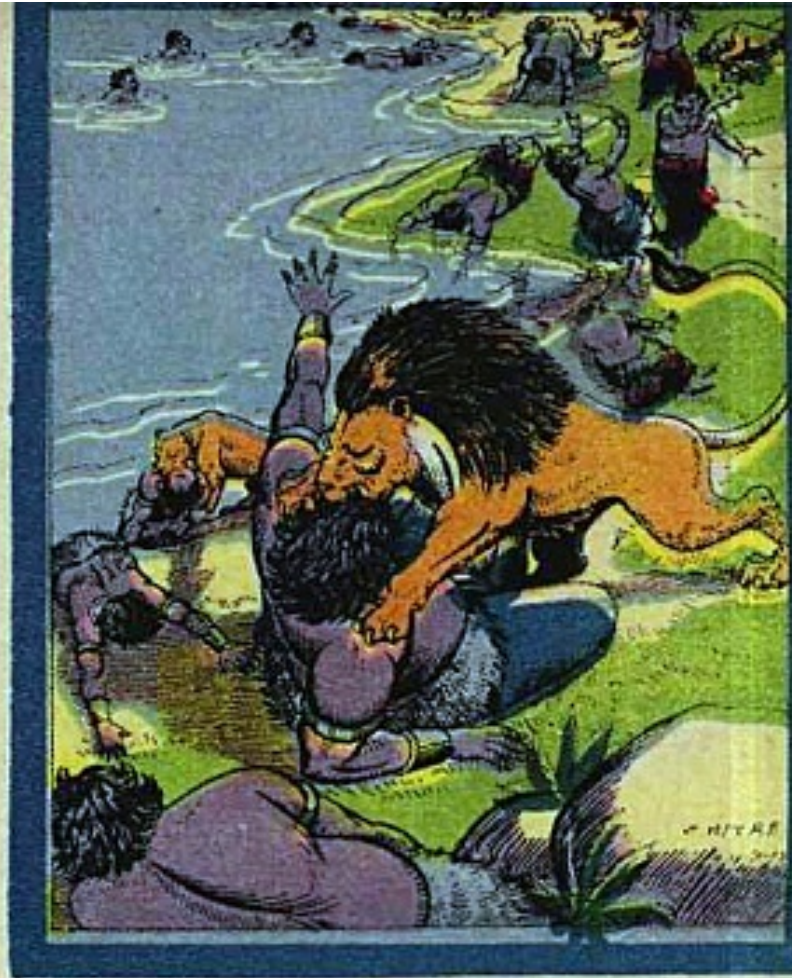
वह जंगल में एक बार जा घुसा, तो हमें नहीं मिलेगा।"

महाकलि और उसके दोनों साथियों को चारों ओर से घेर लिया गया। जंगल की ओर से कुम्भीर और उसके साथी उस पर पत्थर और बड़ी बड़ी टहनियाँ फेंक रहे थे और दूसरी ओर से शशिकान्त और सोमक बाण चला रहे थे। धूमक अपने दो साथियों को लेकर राजकुमारी कान्तिसेना और भामासिन्नी को वहाँ से कहीं दूर सुरक्षित ले गया था।
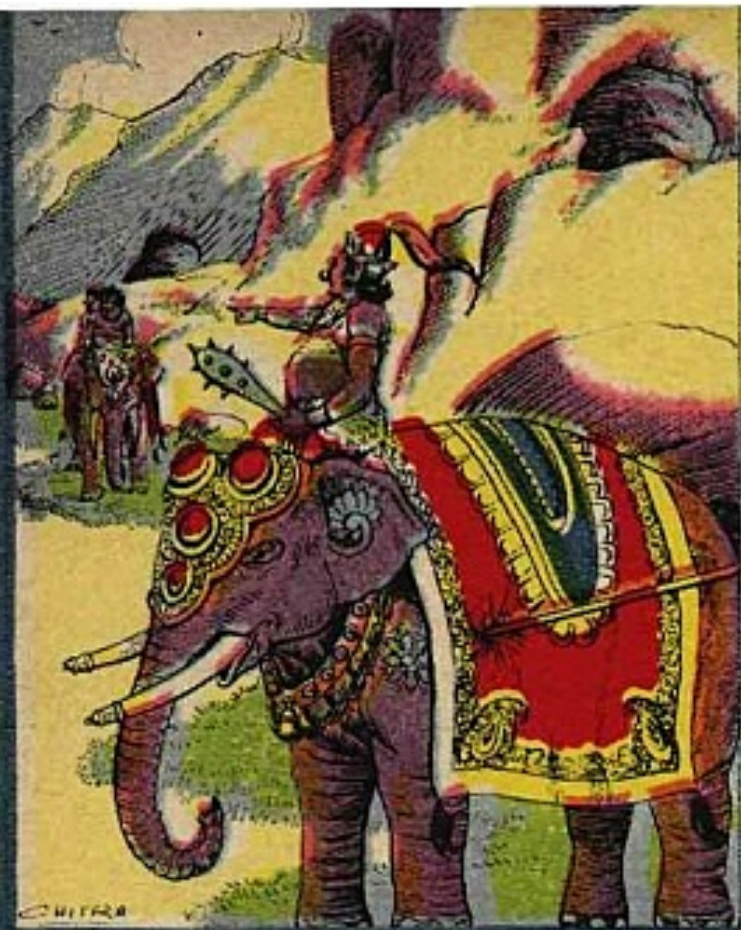
महाकलि जान गया कि वह बुरी तरह फँस गया था। वह गदा लेकर कुछ देर तक लड़ा। फिर वह अंगरक्षकों को खबरदार करके, शशिकान्त की ओर लपका। अपने बाणों से शशिकान्त हाथी को न रोक सका। महाकलि इस प्रकार शत्रुओं के घेरे को तोड़कर, पहाड़ों की ओर भागने लगा। उसके पीछे उसके अंगरक्षकों का हाथी था।

महाकलि जानता था कि बिना रास्ते के हाथी को लेकर पहाड़ पर चढ़ना असम्भव था। फिर उसे एक ऐसी गुफा दिखाई दी, जिसमें वह हाथी के साथ जा सकता था। उसने रुककर, अपने अंगरक्षकों से कहा—"हम शत्रुओं से बहुत दूर चले आये हैं। हम जिस गुफा में छुपनेवाले हैं, उसका वे पता नहीं लगा सकते। वह जो सामने गुफा दिखाई दे रही है, हम उसी में जायेंगे। तुम भी आस पास किसी गुफा में छुप जाओ।"

महाकलि के अंगरक्षक, अपने सरदार के एक गुफा में पहुँच जाने के बाद अपने हाथी को पास के एक गुफा के पास ले गये। यह जानने के लिए कि कहीं शत्रु उनका पीछा तो नहीं कर रहे थे उन्होंने ध्यान से उस मार्ग की ओर देखा, जिससे वे आये थे। फिर उन्होंने हाथी को धीमे धीमे गुफा की ओर चलाया। पर वे बड़े अभागे थे। वे होशियारी से हाथी को गुफा के अन्दर ले जानेवाले ही थे कि गुफा के उपरले भाग से एक पत्थर का लंगर, तेजी से घूमता घूमता उनके गले पर लगा। उनको इतनी जबर्दस्त चोट लगी कि उनका सिर चकरा गया। वे चिल्ला भी न सके। वे हाथियों पर से धड़ाम

से नीचे गिरे। तुरत ऊपर से अट्टहास हुआ। कुछ और पत्थर उनके सिर पर गिरे। अंगरक्षकों के सिर फूट गये और वे वहीं ठंडे हो गये।

तुरत "राहु केतु वंशों का सर्वनाश हो।" कहता एक बौना राक्षस पत्थरों के पीछे से बाहर निकला और पत्थर के लंगर को जोर ज़ोर से घुमाने लगा। उसकी बगल में उसकी जंगली पत्नी पीछे मुड़कर ताली बजाने लगी। दो तीन मीनट गुजर गये। कुन्तल देश का मन्त्री गंगाधर कुछ साथियों के साथ राक्षस के पास आया। राक्षस ने उसे वह गुफा दिखाई, जिसमें महाकलि छुपा हुआ था। वह जोर जोर से चिल्लाने लगा, ताकि उस तरफ भागकर आनेवाले मान्त्रिक कालशम्बर और उसके साथी और तेजी से भागकर आयें।

कुछ ही देर में मान्त्रिक, शशिकान्त, कुम्भीर गुफाओं के पास आये। मन्त्री गंगाधर पहाड़ से उतरकर आया। अपने लड़के से गले मिला। फिर आनन्द में उसके आँसू बह उठे। "शशि! मैं शुरु से ही जानता था, कि तुम जीवित हो। यह बौना राक्षस दो तीन महीने पहिले हमारे राज्य में आया और उसने पाताल दुर्ग के भेदों के बारे में बताया। मैं थोड़ी सेना लेकर कुछ दिन पहिले ही यहाँ पहुँचा। मैंने पाताल दुर्ग का सर्व नाश अपनी आँखों देखा। अच्छा ही हुआ। राजकुमारी कान्तिसेना कहाँ है?"

कान्तिसेना और भामासिंगी थोड़ी देर बाद वहाँ आये। मन्त्री गंगाधर ने राजकुमारी को उसके पिता उग्रसेन के बारे में कुशल समाचार बताये। "इस समय कदम्ब राज्य का कोई राजा नहीं है।

पर तुम्हारे उस राज्य में पहुँचते ही, लोग तुम्हें रानी बनाने के लिए तैयार हैं। फिर इसके बाद तुम जिससे विवाह करोगे वह कदम्ब राज्य का राजा होगा।"

"विवाह? शशिकान्त और राजकुमारी एक दूसरे से प्रेम करके कभी का विवाह कर चुके हैं। मैं जब उसे उठाकर लाया था, तब मैंने उसे जो वचन दिया था, आज मैंने पूरा कर लिया है। क्यों राजकुमारी?" कुम्भीर ने पूछा।

कान्तिसेना यह सुनकर लजा गई। कालशम्बर ने मन्त्री गंगाधर के सामने आकर कहा—"महामन्त्री! सब सुखान्त ही हुआ है। धूमक और सोमक की सहायता मत भूल जाइयेगा। भद्र तो आपका है ही। मैंने भी कुम्भीर को वचन दे रखा है। उसे यहाँ का राजा बनाकर मैं महाकाली की पूजा करने के लिए पहाड़ों में चला जाऊँगा।" फिर उसने बौने राक्षस से पूछा—"वह गुफा कौन-सी है, जिसमें दुष्ट महाकलि छुपा हुआ है?

बौने राक्षस ने गुफा दिखाई। मान्त्रिक गुफा के सामने गया। उसने मन्त्रदण्ड ऊपर उठाकर कहा—"महाकलि! बाहर निकलो, तुम्हारी मौत नजदीक आ गई है। मुझ से द्वन्द्व युद्ध करो। मेरे साथी तुम पर हथियार नहीं उठायेंगे। अगर तुमने मुझे जीत लिया, तो मेरे आदमी जहाँ तुम जाना चाहोगे, वहाँ जाने से तुम्हें नहीं रोकेंगे।"

तुरत महाकलि कन्धे पर गदा रखकर, गुफा से बाहर निकला। "तो आओ हम द्वन्द्व युद्ध करें। मैंने हाथी को गुफा में छोड़ दिया है, आओ।" वह मान्त्रिक की ओर लपका।

कालशम्बर ने उसकी चोट को अपने मन्त्रदण्ड से रोका। "पापी, मैं पहिले ही बताये देता हूँ, तुमने जिसको छुपकर मारा था, उस मेरे पिता का ही यह मन्त्रदण्ड है। यह तुम्हारे शरीर पर लगा नहीं कि पानी के बुलबुले की तरह तुम फूट जाओगे। तो अब देखें, तुम्हारी गदा का हुनर।" वह आगे बढ़ा।

मान्त्रिक की यह बात सुनते ही महाकलि घबरा गया। भय से काँपने लगा। गदा से मन्त्रदण्ड की चोट से बचता, वह धीमे धीमे पीछे हटने लगा। पर कालशम्बर ने महाकलि को भागने नहीं दिया। वह उस पर प्रहार करता गया और जब वह थक गया, "दुष्ट अब मर" कहकर उसने बायें हाथ से उसकी गदा ली और मन्त्रदण्ड को उसकी छाती में भोंक दिया। तुरत चौंधियानेवाला प्रकाश और कान फोड़ देनेवाली ध्वनि हुई। महाकलि का शरीर टुकड़े टुकड़े हो गया और वह आकाश में जा उछला।

मन्त्री गंगाधर आदि ने कालशम्बर का जय जयकार किया। मान्त्रिक ने महाकलि की गदा कुम्भीर को देते हुए कहा—"कुम्भीर तुम दण्डकारण्य के राजा हो। अगर पाताल दुर्ग कुछ बाकी रह गया है, तो वह तुम्हारा ही है।"
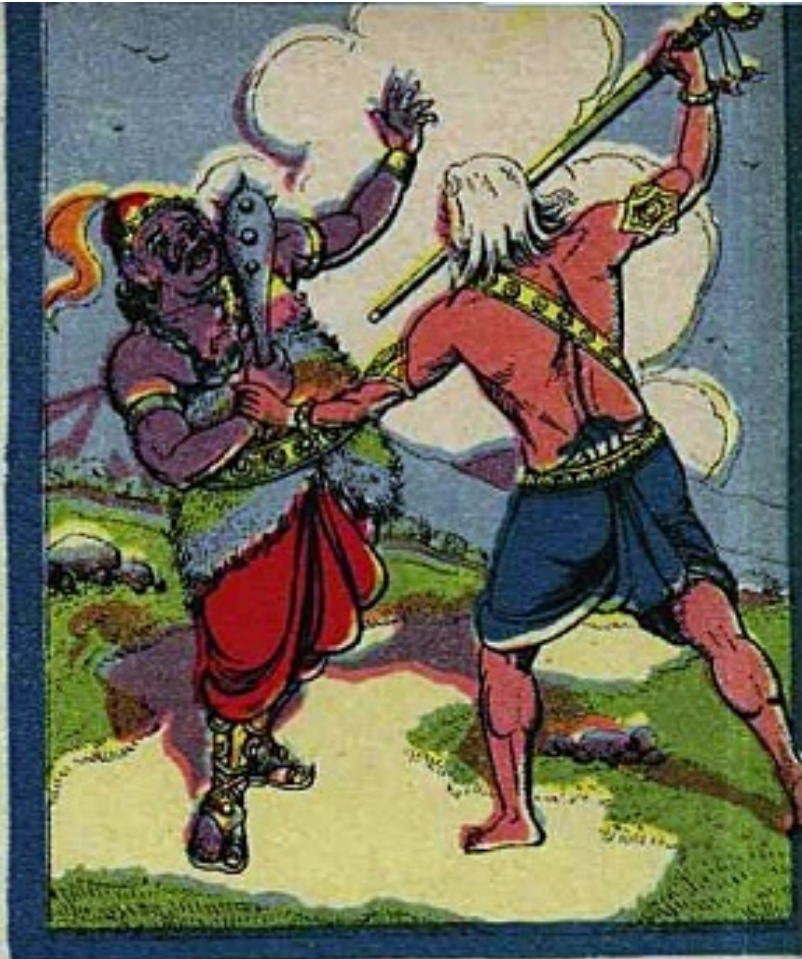
"महामान्त्रिक! मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ। मैं प्रार्थना करता हूँ कि सरोवर के जल को पाताल दुर्ग के ऊपर न बहने दीजिये।" कुम्भीर ने मान्त्रिक को नमस्कार करते हुए कहा।

"वह काम मैं पहिले करूँगा। पत्थर को यथास्थान पर रख देने से प्रवाह रुक जायेगा। घबराओ मत।" कालशम्बर ने कहा।

मन्त्री गंगाधर उनके साथी और कुम्भीर के साथियों ने वह शाम खुशी और दावत में काट दी। गंगाधर दो दिन तक मान्त्रिक और कुम्भीर का अतिथि बनकर रहा। फिर वह शशिकान्त और कान्तिसेना को लेकर, कुन्तल देश की ओर निकल पड़ा।

जब सब जा रहे थे, तो कुम्भीर ने विरूप को अलग बुलाकर कहा– "भामासिंगी के बारे में जरा सम्भलकर रहना। वह महाकलि पर मुग्ध हो गई थी और अन्तिम क्षण में उसने न आने की जिद भी पकड़ी। उसका मुख बन्द कर मैं जबर्दस्ती उसे अपने कन्धे पर डाल कर उठा ले आया था। यदि तुमने उसे ले जाकर, भीलों के सरदार पुलिन्द को न दिया, तो तुम दोनों की जिन्दगी भर दुश्मनी बनी रहेगी।"

"वह उसकी दसवीं जवान पत्नी है। यदि उसे हाथ पैर बाँधकर उठाकर भी ले जाना पड़ा, तो उसे ले जाकर मैं उसे दे दूंगा। महाकलि को तो जीत लिया गया है। पर मुझे कोई खास खुशी नहीं हो रही है चूंकि इस गड़बड़ी में मेरा काला गरुड़ कहीं चला गया है।" विरूप ने दुखी होकर कहा।

"उस काले गरुड़ को इन पहाड़ों पर ढूंढ़ ढाँढ़कर तुम्हारे पास भेजने की जिम्मेवारी मेरी है। ठीक है न?" कुम्भीर ने, विरूप की कमर पकड़कर प्रेम से, उठाकर नीचे उतारा।

"आहा...शाम्भवी...मैं तो यह भूल ही गया था कि तुम एक राक्षस हो।" विरूप जोर से हँसा और वह अपने साथियों से, जो काफी आगे चले गये थे, मिलने के लिए भागने लगा। (समाप्त)

पुण्य क्षेत्र

विक्रमार्क ने अपना हठ न छोड़ा। वह फिर पेड़ के पास गया। पेड़ पर से शव उतार कर कन्धे पर डाल हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा, संसार में सचमुच क्या पवित्र है और क्या नहीं है, यह जानना बड़ा कठिन है। तुम इस प्रकार कष्ट किसी पुण्यात्मा के लिए उठा रहे हो या पापात्मा के लिए मुझे नहीं मालूम है। परन्तु प्रयास तीर्थ की तरह अनेक पुण्य क्षेत्र नहीं हैं। ताकि तुम्हें थकान न मालूम हो, मैं प्रयास तीर्थ की कथा सुनाता हूँ। सुनो।" उसने यूँ कहानी सुनानी शुरु की।

एक बार प्रतिहार देश से कुछ व्यापारी ऊँटों पर माल लादकर, मनशूर नगर की

वेताल कथाएँ

ओर निकले। उनका रास्ता रेगिस्तान में से था। काफिले का सरदार कलिदेव नाम का एक मुख्य व्यापारी था। उसके साथ सात आठ छोटे मोटे व्यापारी थे। ऊँटों को चलानेवाले और और नौकर चाकर बीस और लोग थे।

तीन चौथाई सफर आराम से कट गया था। अभी मनशूर नगर बारह कोस दूर था कि रेगिस्तान में भयंकर तूफान आया। तूफान इतना जबर्दस्त था कि दिन में ही अन्धेरा हो गया था। जो ऊँटों पर सवार थे, उनको ऊँटों के सिर भी नहीं दिखाई देते थे। करीब बारह घंटे तक ऊँटों पर रेत बरसती रही। वह जाकर आधी रात के समय रुकी।

उस आफत से कलिदेव जिन्दा निकल आया। उसने जब तारों की रोशनी में चारों ओर देखा, तो न कोई ऊँट था, न कोई आदमी ही। जिधर देखो उधर रेत के टीले ही टीले थे। उसने अपने नौकरों को बुलाने की कोशिश की, पर नाक और मुख में इतनी रेत भर गई थी कि उसकी आवाज़ ही नहीं निकली।

थोड़ी देर बाद सवेरा हुआ। दिन की रोशनी में कलिदेव ने एक भयंकर दृश्य देखा। सिवाय दो ऊँटों के और तीन सेवकों के बाकी ऊँट और सेवक तूफ़ान में मर मरा गये थे। बहुत से ऊँट और आदमी रेत के नीचे दब दबा गये थे।

जो जीवित थे, उन्होंने कलिदेव से कहा—"बाबू, हम जिस समय घर से निकले थे, वह अच्छा समय नहीं था। यह बड़ी गन्दी जगह है, यह हमारे लोगों को और ऊँटों को निगल गई। यहाँ हमें एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए।"

कलिदेव ने उनकी बात नहीं सुनी। "अरे हमारे लोग जो यहाँ मर गये हैं, उनको छोड़कर कैसे जाया जाये? जब तक इन शवों को कहीं अच्छी जगह गाड़ नहीं दिया जाता, तब तक मैं यहाँ से नहीं हिलूँगा।" उसने कहा।

उसकी आज्ञा के अनुसार, सेवकों ने एक नीची जगह गढ़ा खोदना शुरु किया। उन्होंने अभी थोड़ा ही खोदा था कि उनको पानी दिखाई दिया और वह इतनी जोर से निकला कि जल्दी वह सारी जगह पानी से भर गई। उन्होंने उस पानी में स्नान किया। मशकें भर लीं और ऊँटों को भी पानी पिलाया। सबकी जान में जान आई। पानी अमृत की तरह था।

फिर कलिदेव ने एक और जगह गढ़े खुदवाये। एक गढ़े में उसने मनुष्यों की लाशें डलवादीं और दूसरे में ऊँटों को। और तीसरे में, उसने जो लोग मर गये थे, उनके माल को डाल दिया। बाकी ऊँटों पर अपना माल डालकर, उसने अपनी यात्रा फिर शुरु कर दी।

थोड़ा समय बीता। पानी के गढ़े में पानी वैसा का वैसा ही रहा। एक बार, घोड़ों पर डाकुओं का एक गिरोह उस तरफ आया। वे बड़ी दूर से रेगिस्तान में आ रहे थे, इसलिए उनको बड़ी प्यास लग रही थी। वे उस गढ़े के पास आये। उसमें से पानी पीकर और अपने घोड़ों को पिलाकर, उन्होंने अपनी रक्षा की। डाकुओं का सरदार उस गढ़े की ओर अचरज से देखने लगा। वह रेगिस्तान का चप्पा चप्पा जानता था। जब एक महीने पहिले वह इस तरफ से गुजरा था, तो पानी का गढ़ा कहीं यहाँ न था। गढ़े में पानी इतना था कि आसपास के रेत में वह समाता जाता था।
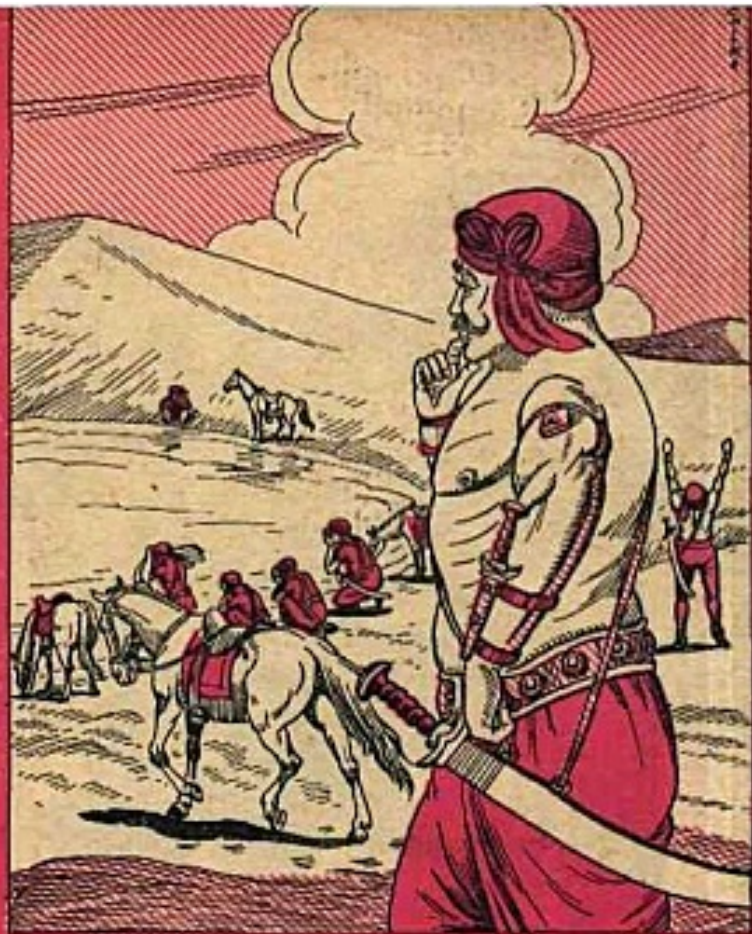
"रेगिस्तान में डाकू की ज़िन्दगी बसर करने से तो यही अच्छा है कि इस गढ़े को ले लिया जाये और आराम से ज़िन्दगी बसर की जाये। लड़ना झगड़ना छोड़कर, सबसे मान-सम्मान पाया जा सकता है। पहिले इस गढ़े को बड़ा करना होगा। फिर यहाँ एक देवता की प्रतिष्ठा करनी होगी। इसके बाद, मैं गेरुआ पहिनकर यहाँ पुजारी बन जाऊँगा। तुम मेरे चेले बनकर आसपास के गाँवों में खबर फैला देना कि यहाँ एक पुण्यक्षेत्र बन गया है। यदि हमने यहाँ पानी भी बेचना शुरु किया, तो ज़िन्दगी में किसी चीज़ की कमी नहीं रहेगी। अगर लोगों ने इसे पुण्यक्षेत्र मान लिया, तो कहना ही क्या!" डाकुओं के सरदार ने अपने लोगों से कहा।

उसकी चाल चल गई। चोरों ने गढ़े को बड़ा करके, अच्छी बावड़ी बना दी। उनके प्रचार के कारण, यात्री भी आने लगे। उनकी दृष्टि में डाकू और उसके चेले पवित्र हो गये।

रेगिस्तान के इस पुण्य तीर्थ के बारे में तरह तरह की बातें उड़ने लगीं। कहा गया कि जो कोई वहाँ का पानी पीता था, उसकी बड़ी से बड़ी बीमारी भी ठीक हो जाती थी। कई रोगी और वृद्ध वहाँ आया करते, कई ने वहाँ की देवी को साष्टान्ग करके, वहीं बस जाने की सोची।

मनशूर नगर के राजा तक उस तीर्थ की प्रसिद्धि पहुँची। वह भी उसे देखने गया। वहाँ, जो यात्री दिखाई दिये, उसने उनसे बात भी की। सबने तीर्थ की बड़ी प्रशंसा की। राजा बड़ा खुश हुआ। वहाँ उसने नगर बसाने के लिए सहायता की। इसके लिए आवश्यक व्यक्तियों की

नियुक्ति भी की। राजा ही यदि दिलचस्पी ले रहे हों, तो काम होते कितनी देर लगती है ? बावड़ी के पास देवी के लिए संगमरमर का मन्दिर बना दिया गया। यात्रियों के लिए धर्मशालायें और वहीं रहकर, मन्दिर में तरह तरह की पूजा करनेवालों के लिए घर बनाये गये। दुकानें खुल गईं। सड़कें बन गईं। पेड़ पौधे लगा दिये गये। मरुस्थल में, व्यापार करनेवालों के लिए वह जगह व्यापार का अड्डा बन गया।

तीर्थ की आय भी प्रति वर्ष बढ़ती गई। राजा को वहाँ से एक कौड़ी भी न मिलती। वह धन डाकू अपने पास रख लेते। पर डाकू और उनका सरदार उस जगह को छोड़कर नहीं गये। वे, जब तक जिन्दा रहे, वहीं रहे, फिर वहीं मर मरा गये। डाकुओं के सरदार के मर जाने के बाद, राजा ने उस मन्दिर की देखभाल के लिए, एक धर्मकर्ता की वेतन पर नियुक्ति की। जो कुछ आय थी, उसका आधा हिस्सा, राजा के खज़ाने में जाता और आधा प्रयास तीर्थ के कार्यों में ही लगा दिया जाता।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा—"राजा, इस प्रकार परम पापी डाकुओं के लोगों को ठगने के उद्देश्य से बनाये गये, प्रयास तीर्थ की कैसे अभिवृद्धि हुई? इस प्रकार का अपवित्र तीर्थ, प्रजा का आकर्षण केन्द्र कैसे बना? यह सब धर्म के विरुद्ध ही हुआ था? इस प्रश्नों का अगर तुमने जान बूझकर उत्तर न दिया, तो तुम्हारे सिर के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे।

इस पर विक्रमार्क ने कहा—"प्रयास तीर्थ को अपवित्र बताने के लिए कोई कारण नहीं है। वहाँ बावड़ी, एक पुण्यात्मा के, पुण्य क.र्य के परिणाम स्वरूप बनी थी। कलिदेव ने अपने साथियों को श्रद्धा के साथ गाड़ दिया था, उसने उन्हें धूप, बारिश में सड़ने गलने के लिए नहीं छोड़ा था। डाकुओं के उस जगह आने से पहिले ही वह पुण्यक्षेत्र हो गया था। इसलिए ही डाकुओं के सरदार को, व्यापारियों को लूटने की दुर्बुद्धि वहाँ जाती रही और इसलिए ही उसने उस तीर्थ को बड़ा करने का संकल्प किया। एक पुण्य तीर्थ में कितने ही पापी रह सकते हैं। उनके कारण उसकी पवित्रता कम नहीं होती। उस तीर्थ में रहकर, यह भी कहा जा सकता है कि डाकू अपने पापों से मुक्त हो गये थे। इसलिए जो कुछ पैसा उनको मिला, वे उसे लेकर रफू चक्कर नहीं हो गये, तीर्थ में ही आजीवन रहे और आखिर वहीं मर गये।"

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)
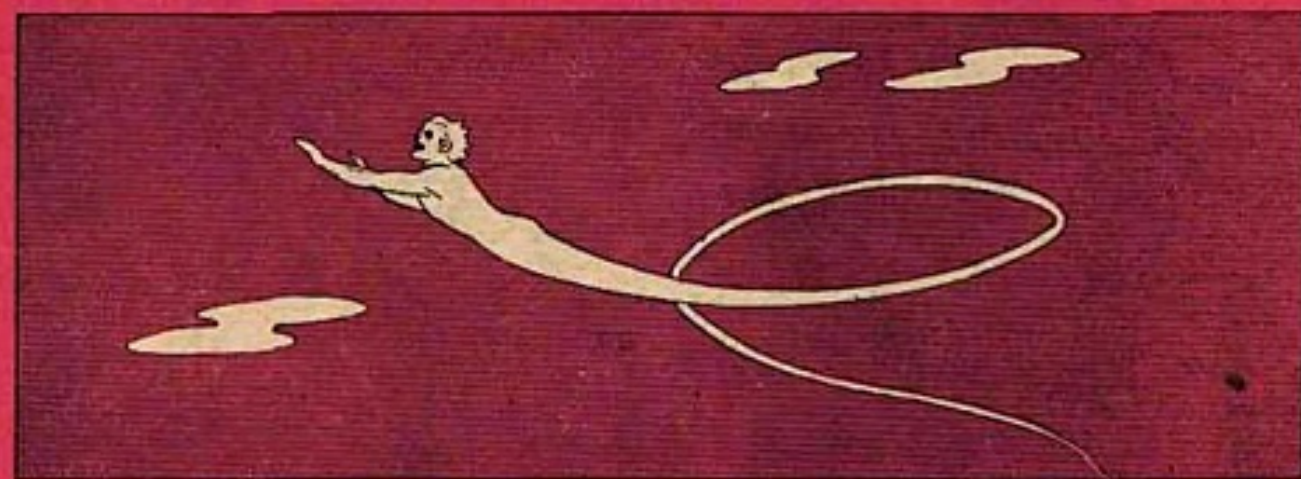
ऋण का अनुबन्ध

एक गाँव में रामशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहा करता था। वह बहुत पढ़ा लिखा, निष्ठावान था। उसकी पत्नी भी उसके अनुकूल थी। अगर कोई कहता कि तुम्हारे बच्चे नहीं हैं, तो रामशर्मा कहा करता—"जब तक कुछ लेना देना न हो, तो बच्चे भला क्यों पैदा होंगे? पहिले जन्म में किये गये ऋण को वसूल करने के लिए ही, या देने के लिए ही बच्चे पैदा होते हैं।" उसका यह दृढ़ विश्वास था।

इसलिए जब उसकी पत्नी ने एक लड़के को जन्म दिया, वह उसे श्मशान में ले गया। वहाँ उसने एक गढ़ा खोदा, उसमें शिशु को रखकर, कुछ पानी छिड़ककर, मन्त्र पढ़कर पूछा—"अरे, तुम कौन हो? मेरे यहाँ क्यों पैदा हुए हो?"

शिशु ने कहा—"मैं पिछले जन्म में लकड़हारा था तुमने मुझ से एक गट्ठर लकड़ियाँ लीं, पर उसके लिए पैसे न दिये। उसे वसूलने के लिए मैं तुम्हारे यहाँ पैदा हुआ हूँ।

"मुझे तुम्हें कितना देना है?" रामशर्मा ने पूछा।

"दो आने।" बच्चे ने कहा।

"अगर दो आने दूँ, तो चले जाओगे?" रामशर्मा ने पूछा।

"चला जाऊँगा।" शिशु ने कहा।

रामशर्मा ने जब अंटी में से दो आने निकालकर उस बच्चे पर रखे, तो उसने प्राण छोड़ दिये। रामशर्मा, उस बच्चे को उस गढ़े में गाड़कर घर चला आया।

रामशर्मा के जब अगली बार बच्चा हुआ, तो उसे भी श्मशान ले गया। उस पर मन्त्रजल छिड़ककर वही प्रश्न किये। उसके प्रश्नों के उत्तर में उस शिशु ने कहा— "मैं पहिले जन्म में एरण्ड का तेल बेचा करता था और तुमने एक मन एरण्ड के तेल के पैसे मार लिये।"

"अगर तुम्हें मन भर तेल दूँ तो क्या तुम चले जाओगे?" रामशर्मा ने पूछा।

"चला जाऊँगा।" बच्चे ने कहा।

रामशर्मा उसे घर ले गया और एक मन एरण्ड का तेल लाकर भी उसने घर में रखा। "जब तक यह एरण्ड का तेल नहीं खतम हो जाता, तभी तक तेरा यह लड़का जिन्दा रहेगा।" उसने पत्नी से कहा। पति के कहे अनुसार वह बच्चे को वह तेल ही लगाती रही।

तेल खतम होने को था कि बच्चे को कोई बीमारी हुई और जैसे जैसे तेल कम होता गया, वैसे वैसे बीमारी बढ़ती गई।

"मैं इसकी तकलीफ नहीं देख पा रही हूँ....चला जाये तो अच्छा है। तेल खतम हो गया है। यह अभी तक क्यों जिन्दा है?" रामशर्मा की पत्नी ने उससे पूछा।

"जो कुछ बर्तन में तेल इधर उधर रह गया है, उसे पोंछकर उसे लगा दो। वह चला जायेगा।" रामशर्मा ने कहा। उसकी पत्नी ने वैसा ही किया। बच्चा मर गया। इसके बाद उसको अपने पति की बातों पर विश्वास हो गया।

उसकी पत्नी के एक और बच्चा हुआ। रामशर्मा उस लड़के को भी श्मशान ले गया। जैसा कि उसने और बच्चों से पूछा था, उससे भी पूछा।

"मैंने पिछले जन्म में आपसे दो हज़ार रुपये लिये थे उन्हें चुकाने के लिए आया हूँ।" बच्चे ने कहा। रामशर्मा ने उस लड़के को लाकर, पत्नी को देते हुए कहा—"यह लड़का चिरंजीवी होगा। पर इससे भूलकर भी कुछ न लेना। अगर तुमने इससे कुछ लिया, तो समझ लो कि यह हमारा नहीं रहेगा।" उसने कहा।

उन्होंने लड़के का नाम माधव रखा। उसने पिता के यहाँ ही विद्याभ्यास किया और स्वयं कमाने भी लगा। वह बहुत कमाता, पर माँ बाप उससे एक दमड़ी भी न लेते।

एक बार माधव को एक थैला लेकर, दूसरे गाँव जाना पड़ा। वह फाटक के पास खड़े घोड़े पर सवार होने को था कि वह अड़ गया। उसकी माँ, दरवाजे के पास खड़ी थी। "माँ, जरा इस थैले को पकड़ो, घोड़े पर सवार होकर ले लूँगा।" कहकर उसने घोड़े पर सवार होने का प्रयत्न किया, घोड़ा पीछे मुड़ा और उसने माधव की छाती पर जोर से दुलत्ती मारी। उसी क्षण माधव नीचे गिरा और मर गया।

रामशर्मा, जब यह हुआ था, घर में न था। जब वह वापिस आया, तो उसने अपने लड़के के शव और रोती हुई अपनी पत्नी को देखा, तो उसमें ठीक दो हज़ार रुपये थे।

"क्यों रोती हो? वह अपना ऋण चुकाकर चला गया है।" रामशर्मा ने अपनी पत्नी को यूँ आश्वासन दिया।

चन्द्रसेना

चन्द्रगिरि राज्य का उग्रसेन नाम का राजा था। वह बड़ा क्रूर था और मूर्ख भी। उसके नीचे काम करना प्रधान मन्त्री से लेकर, छोटे-मोटे नौकर के लिए भी कठिन था।

उग्रसेन की पत्नी का नाम शान्तादेवी था। वह अपने नाम के अनुरूप, असाधारण गुणवती थी और दयालु भी। लोग रानी को देखकर दया किया करते क्योंकि रानी के बच्चे न थे। बच्चों के लिए जितनी वह परेशान थी, लोग भी उतने ही परेशान थे। शान्ता देवी के गर्भ से कोई लड़का हुआ, तो उसे राजा बनाकर, उग्रसेन को जंगलों में खदेड़ने तक के लिए वे तैयार थे। मन्त्रियों को यह भय था कि अगर उग्रसेन निस्सन्तान मर गया, तो राज्य को कोई और हथियालेगा।

उन्ही दिनों चन्द्रगिरि नगर में एक मुनि आया। उग्रसेन ने उसका अतिथि सत्कार किया। रानी ने उससे अपनी सन्तान की इच्छा व्यक्त की। मुनि ने अपने कमन्डल से एक फल निकालकर, रानी के हाथ में रखकर कहा—"आज रात इसे खाकर सो जाओ। तुम्हारे एक लड़की पैदा होगी और यथासमय वह इस देश की रानी बनेगी।"

उस दिन शाम को उग्रसेन ने अपनी पत्नी से कहा "तुम इस मुनि के दिये हुए फल को मत खाओ। लड़की का पैदा होना कोई वर है? मेरी उत्तराधिकारिणी कोई स्त्री हो, यह मुझे बिल्कुल गँवारा नहीं है।"

विनयकुमार

"कोई बचा तो होने दीजिये। उस मुनि ने इतने आदर के साथ यह फल दिया, उसे न खाना अच्छा न होगा। वह महात्मा है।" शान्ता देवी ने कहा।

"अगर वह मुनि इतना महात्मा था, तो उसने तुम्हें पुत्र का वर क्यों नहीं दिया? मेरा अपमान करने के लिए ही उसने तुम्हें यह फल दिया है।" कहकर उस दुष्ट राजा ने, उस फल को लेकर दूर फेंक दिया। उसी समय, एक किसान स्त्री, खेत से घास का टोकरा सिर पर रखकर, राजमहल के बगल में से अपने घर जा रही थी। राजा का फेंका हुआ फल टोकरे में जा गिरा। जब उसने घास ले जाकर, गौ बैलों के लिए नीचे डाली, उसमें उसे एक फल दिखाई दिया। यह सोचकर कि किसी देवता ने उस पर दया करके, उसे वह दिया होगा....वह उसे आँखों पर लगाकर, खाकर आराम से सो गई।

उम्र में वह किसान स्त्री, रानी से भी बड़ी थी। उसके बचे न थे। परन्तु उस फल के खाने के थोड़े दिन बाद ही वह गर्भवती हुई। उसने अपने पति से कहा कि यदि वह गर्भवती हुई थी, तो उस फल के कारण ही हुई थी। धीमे धीमे यह बात आसपास के लोगों को भी मालूम हो गई। पर किसी को विश्वास न हुआ।

यथासमय, किसान स्त्री के एक लड़की पैदा हुई। वह उस लड़की को लेकर, नगर के एक मन्दिर में गई। उसी समय रानी शान्ता देवी भी मन्दिर में आईं। एक साधारण स्त्री की गोद में, एक गोल मटोल बची को चमचमाता देख उसने पूछा—"यह किसकी बची है?"

किसान स्त्री ने बताया कि कैसे उसे फल मिला था और कैसे फल खाकर वह गर्भवती हो गई थी। रानी जान गई कि आखिर क्या बात थी—जो फल उसे खाना चाहिए था, उसने खा लिया था और बच्चे को जन्म दिया था। वह लड़की बड़ी होकर, अवश्य राज्य की गद्दी पर आयेगी। उस महामुनि की बात झूटी नहीं साबित होगी।

इसलिए रानी ने उस किसान स्त्री से कहा—"तुम यह न सोचो कि यह तुम्हारी ही बच्ची है। यह मेरी बच्ची भी है। इसे कोई कमी न होने दो। इसकी इस तरह परवरिश करो, जैसे कि वह रनिवास में हो।" किसान स्त्री बड़ी खुश हुई। उसने रानी को साष्टान्ग किया। दोनों ने प्रति दिन सायँकाल मन्दिर में मिलने की व्यवस्था की।

फिर शान्ता देवी ने अपने महल के पास बाल क्रीड़ा मन्दिर बनवाया और उसकी रखवाली करने के लिए उस किसान दम्पति को नियुक्त किया। वहाँ नगर के बड़े बड़े कुटुम्बों के बच्चे आकर खेला करते। रानी उनके खेल कूद देखने के बहाने जाकर, उस किसान स्त्री की लड़की से खेला करती। उस बच्ची का रानी ने चन्द्रसेना नाम रखा।

होने को, चन्द्रसेना, किसान स्त्री की लड़की थी, पर वह कुलीन, समृद्ध कुटुम्बों के बच्चों से कम न थी। वह सबके साथ पढ़ा करती। लड़कों के साथ, उसने अस्त्र शस्त्रों का उपयोग भी सीखा। घुड़सवारी भी वह जान गई। उसकी पोषाक और गहने देखकर कोई यह नहीं अनुमान कर सकता था कि वह किसान की लड़की थी।

चन्द्रसेना जब सोलह वर्ष की हुई, तो राजा को उसके जन्म का रहस्य मालूम हो गया। वह जान गया कि जो फल उसने फेंक दिया था, वह फाल्तू नहीं गया था। उसे किसी निम्न जाति की स्त्री ने खा लिया था और एक ऐसी लड़की को जन्म दिया था जो उसके बाद उसकी उत्तराधिकारिणी बनेगी। उग्रसेन यह बर्दाश्त नहीं कर सका। राजा को यह भी मालूम हो गया कि रानी यह शुरु से ही जानती थी और उसने ही उसको प्यार से पाला-पोसा था। उसने तुरत आज्ञा दी कि रानी को कैद में डाल दिया जाये और चन्द्रसेना को मार दिया जाये। बाल क्रीड़ा मन्दिर को बन्द कर दिया गया। चन्द्रसेना के माँ बाप को देश निकाला दे दिया गया।

सैनिक चन्द्रसेना को मारने के लिए उस नगर से बाहर ले गये। पर उन्होंने उसे मारा नहीं। क्योंकि रानी को, राजा ने कैद में डाल दिया था, इसलिए वे उससे बहुत क्रुद्ध थे। उन्होंने चन्द्रसेना को एक घोड़ा देकर, उस पर सवार होकर, जंगल में भाग जाने के लिए कहा और जंगल के जानवर को मार कर, खून से लथपथ तलवारें ले जाकर राजा को दिखाईं।

चन्द्रसेना सीधे जंगलियों के गाँव में गई। वे जंगली सचमुच जंगली न थे। वे कभी चन्द्रगिरि में ही रहते थे। क्योंकि उन्होंने कुछ कानूनों का उलंघन किया था। इसलिए उग्रसेन ने उनको जंगलों में खदेड़ दिया था। वहाँ भी उसने उन्हें आराम से न रहने दिया। हमेशा उन पर हमले किया करता।

वन में इन युवकों ने कई प्रकार की युद्ध विद्या सीखी। राजा जब कभी उन पर सेना भेजा करता, वे उसका नाश कर दिया करते।

चन्द्रसेना ने उन लोगों से अपनी कहानी सुनाई। उसने अपना पराक्रम दिखाकर कहा—"मैं देखूँगी कि राजा तुम्हें नहीं सताये। मेरे साथ राजधानी पर आक्रमण करने के लिए निकल पड़ो। जंगलियों के नेता भी इस बात के लिए मान गये। चन्द्रसेना ने पुरुष की पोषाक पहिनी। दो सौ जंगली योद्धाओं को साथ लेकर चन्द्रगिरि के लिए निकल पड़ी। क्योंकि वे निहत्थे थे, किसी ने उनको नहीं रोका।

चन्द्रसेना अपने लोगों से पहिले ही आयुधागार में गई और झगड़कर उसने हथियार ले लिये फिर सब ने मिलकर राजमहल पर हमला किया। उग्रसेन अकेला ही तलवार लेकर लड़ा और युद्ध भूमि में ही उसकी मृत्यु हो गई। फिर चन्द्रसेना ने गद्दी पर आसीन होकर, सब दरबारियों को बुलाया और उनकी अनुमति से रानी बन गई। शान्ता देवी को कैद से रिहा कर दिया गया। किसान दम्पति वापिस आ गया।

चन्द्रसेना का पट्टाभिषेक बड़े जोर शोर से हुआ। उसकी जीवनी पर लोग गीत बनाकर गाने लगे। उसने उन जंगलियों के रहने की व्यवस्था कर दी।

उनमें से एक सुन्दर युवक से विवाह करके, उसने बहुत समय तक सुख से राज्य किया।

महीने का वेतन

एक गाँव में एक किसान रहा करता था। वह बड़ा कंजूस था। उसने एक नौकर को काम पर रखा। काम पर रखने से पहिले किसान ने उससे कहा—"तुम्हें महावार चार रुपये वेतन दूँगा। पर तुमसे मैं जो चार प्रश्न करूँ उनका ठीक ठीक जवाब देना। अगर तुमने जवाब न दिया, तो चार रुपये के बदले तुम्हें चार ठुल्ले दूँगा।" नौकर मान गया।

एक महीना खतम हो गया। किसान ने नौकर को बुलाकर कहा—"अरे, आज तुम्हें वेतन देना है। मेरे प्रश्नों का जवाब देकर, अपना वेतन ले लो।" दोनों, सरदी के लिए जलाये गये आग के पास गये। उसी के पास एक बिल्ली सिकुड़ी हुई लेटी थी। किसान ने बिल्ली को दिखाकर पूछा—"यह क्या है?"

"बिल्ली है न?" नौकर ने कहा।

"नहीं, यह सफाई है। क्योंकि तुमने गलत बताया है, इसलिए खाओ एक ठुल्ला।" कहकर किसान ने नौकर के सिर पर एक ठुल्ला मारा। फिर किसान ने आग दिखाकर पूछा—"यह क्या है?"

"आग।" नौकर ने कहा।

"नहीं, यह सुख है। गलत जवाब दिया है, इसलिए एक और ठुल्ला।" किसान ने कहा। फिर किसान ने पानी का एक घड़ा दिखाकर पूछा—"यह क्या है?"

"यह मिट्टी का घड़ा है।" नौकर ने कहा।

"नहीं, गलत। उसे शरीर कहना चाहिए।" किसान ने उसे तीसरा ठुल्ला

रामलाल

मारा। आखिर उसने घर की छत की ओर दिखाकर पूछा—"यह क्या है?"

"छत...." नौकर ने कहा।

"नहीं....ऊँचाई कहना चाहिए था।" कहकर किसान ने उसको चौथा ठुल्ला भी मारा। और फिर कहा—"जो तुमने पिछले माह काम किया था, उसका तुम्हें वेतन मिल गया है। अगर तुम चाहो तो इन्हीं शर्तों पर इस महीने भी काम करो और अपना वेतन ले लो।"

"मैं तब तक नहीं जाऊँगा, जब तक आपके प्रश्नों का ठीक उत्तर नहीं दे दूँगा।" नौकर ने कहा।

थोड़ी देर बाद, किसान खेत में काम करने चला गया। नौकर ने तेल में भीगा कपड़ा बिल्ली की पूँछ में बाँध दिया। उसे जलाकर उसने उसे घर की छत पर दौड़ाया, छत जलने लगी। नौकर घड़ों में से पानी लेकर उस पर डालने लगा। पिछवाड़े में किसान की पत्नी काम कर रही थी उसने घर की छत को जलते देखकर पूछा—"अरे पानी यूँ छिड़कने से आग बुझती है? खेत में जाकर अपने मालिक से कहो।"

नौकर ने खेत में जाकर किसान से कहा—"मालिक, सफाई, सुख को लेकर चली गई। छत अब महा सुख में है। शरीर का सारा पानी उड़ेल दिया, तो भी कोई फायदा न हुआ। अब मैं अपने रास्ते जा रहा हूँ।" यह कहकर वह चला गया। जो कुछ नौकर ने कहा था....उसका एक शब्द भी किसान को समझ में न आया। इसलिए वह घर न गया। किसान का घर, उसमें रखी उसकी चीज़ें सब जलकर राख हो गईं।

बुढ़िया का सुख

एक बार एक राजा और उसका मन्त्री अपने राज्य की परिस्थिति जानने के लिए गाँव गाँव घूम रहे थे कि एक गाँव में, एक झोंपड़ी के सामने एक बुढ़िया बैठी रो रही थी—"न मालूम मुझे कितने और दिन ये कष्ट झेलने होंगे, जाने कब वह भगवान मुझे बुलाये।"

राजा ने उसके पास जाकर पूछा—"तुम्हें क्या कष्ट है, हमें बताओ। हम तुम्हारी मदद करेंगे।"

"आओ बैठो। लगता है, कहीं दूर से आ रहे हो। बस, यह जिन्दगी हो गई समझो। मेरी एक नाती है। वह कभी कभी आकर मुझे देख जाती है। अगर मैं उसके यहाँ रहना भी चाहूँ, तो उसकी सास की और मेरी बनती नहीं है। इसलिए मैं इस झोंपड़ी में अकेली रहती हूँ। पाँच आठ घर में काम कर कराके अपना पेट भर लेती हूँ। इस इन्तज़ार में हूँ कि कब भगवान बुलाते हैं और मैं कब जाती हूँ। और मुझे क्या करना धरना है?" बुढ़िया ने कहा।

"तुम इस उम्र में मेहनत करके कमा नहीं सकते। तुम यह रुपया लो और आराम से समय काटो।" यह कहकर राजा ने बुढ़िया को सौ रुपये दिये और मन्त्री के साथ आगे बढ़ गया।

एक सप्ताह बाद राजा और मन्त्री अपनी राजधानी की ओर जाते, फिर उसी तरफ़ आये।

बुढ़िया झोंपड़ी के बाहर बैठी कह रही थी—"कब तक? क्यों नहीं यह

रामचन्द्र

जिन्दगी खतम हो जाती?" वह रो रही थी।

राजा ने उसमें कोई परिवर्तन न देखकर उसके पास जाकर पूछा—"अच्छी हो नानी? मैंने जो पैसा दिया था, वह है कि खतम हो गया है?"

"मैं उस पैसे का भला क्या करती? मैंने उसे अपनी नाती के लिए हिफाजत से रख दिया है। न मालूम वह कब आये? और इस बीच मैं डर रही हूँ कि कहीं इसे चोर चुरा न ले जायें।" बुढ़िया ने इधर उधर देखते हुए कहा।

"देखो नानी! कल मैं अपने लोगों को भेजूँगा। उनके साथ तुम मेरे घर आ जाना। वह तुम्हें हर आराम दिया जायेगा। कोई तकलीफ न होगी।" यह कहकर राजा चला गया।

अगले दिन राजा के सैनिक बुढ़िया के लिए पालकी लेकर आये। बुढ़िया को भी यह मालूम हो गया कि जिसने उससे बात की थी, वह राजा ही था। राजा की आज्ञा थी, इसलिए उसे पालकी में जाना ही पड़ा।

सैनिकों ने बुढ़िया के रहने के लिए राजमहल के एक कोने में इन्तजाम किया। बुढ़िया के लिए भोजन महल से ही आया करता था।

राजा ने सोचा कि बुढ़िया की जिन्दगी आराम से कट रही होगी। कुछ दिनों बाद राजा उसे देखने आया। "क्यों नानी खुश हो न? सब ठीक है न?" उसने उससे पूछा।

बुढ़िया ने लम्बा चेहरा बनाकर कहा—"आराम से क्यों नहीं हूँ.... बेटा, पर न मालूम मेरा घरबार क्या हुआ होगा?"

राजा ने चकित होकर पूछा—"क्या यहाँ से अच्छी तुम अपनी झोंपड़ी में थी? बताओ।"

"नहीं बेटा, यह बात नहीं, पर जब मेरी नाती आयेगी, तो मुझे उस घर में देखने जायेगी। जब मैं वहाँ नहीं हो ऊँगी तो वह सोचेगी कि मुझे क्या हो गया है?"

यह सोचकर कि बुढ़िया अपनी नाती से मिलना चाहती थी। राजा ने उसकी नाती को बुलवा भेजा। नाती अपनी एक बच्ची के साथ वहाँ आ गई।

राजमहल का वातावरण देखकर नाती को ऐसा लगा, जैसे वह काँटों पर हो। क्या करें और क्या समझा जाये? अगर बच्ची रोती तो लोग उसे बुरा समझते। बुढ़िया को भी चैन न थी। वह नाती को कदम कदम पर धमकाती "ऐसा न करो, यह न करो, वह न करो।"

दो दिन नाती ने इस तरह काटे जैसे दो युग हों। "मैं घर जाना चाहती हूँ। मुझे जाने दो।" वह बुढ़िया की दी हुई रुपयों की थैली लेकर बच्ची के साथ चली गई।

इसके बाद बुढ़िया और भी दुःखी रहने लगी। उसे राजमहल नरक-सा लगने लगा। वह राजमहल में थी, इसलिए ही तो नाती इतने दिनों बाद आई और दो रोज भी न रही। अगर वह अपने ही घर रहती, तो क्या वह और दिन न रहती?

राजा फिर आया। उसने फिर उससे पूछा—"क्यों नानी, अब भी क्यों दुःखी हो?"

"दुःख की क्या बात है? अगर मैं अपने गाँव में होती, तो यह काम करती

वह काम करती। यहाँ क्या काम है? कुछ भी नहीं है। खाओ और खाली बैठो—आलसियों का जीवन।" बुढ़िया ने कहा।

यह सोचकर कि कामकाज़ करनेवाली स्त्री के लिए खाली बैठना मुश्किल था राजा ने बुढ़िया को अपनी लड़की के पास ले जाकर उससे कहा—"इस बुढ़िया से कोई छोटे मोटे काम करवाती रहो। खाली बैठे उसको कुछ सूझ नहीं रहा है।"

राजकुमारी के यहाँ उसका समय और आराम से कटने लगा। पर अब उसे घर की याद और सताने लगी। उसे लगा, जैसे वह अपने घर से बहुत दूर हो। वह हमेशा घर की चाबियाँ देख देखकर आँसू बहाया करती।

"क्यों नानी, दुःखी मालूम होती हो?" राजकुमारी ने उससे पूछा।

"बेटी, राजा से कहो कि एक बार वह मुझे घर भेज दे। बस, चार दिन ठहरकर चली आऊँगी।" बुढ़िया ने कहा।

लड़की के कहते ही राजा ने बुढ़िया को उसके घर छोड़ आने के लिए अपने सैनिकों से कहा। एक सिपाही के वेष में वह स्वयं यह देखने गया कि वह क्या करती है।

बुढ़िया पालकी से उतरी। झट घर का ताला खोला। उसे बुहारा। अन्दर एक चटाई डाली। "भगवान, अब कहीं जाकर नरक से छुट्टी मिली। हाय भगवान।" उसने जोर से कहा।

कष्ट हो, या सुख....बुढ़िया केवल चाहती थी स्वतन्त्रता, अपना घर, अपना काम, अपना जीवन....यह राजा जान गया और अपने महल वापिस चला गया।

कौव्वों का स्नेह

एक गाँव में सारन्ग नाम का एक लड़का रहा करता था। छुटपन में ही उसकी माँ गुज़र गई थी। उसकी उम्र दस वर्ष की थी कि उसका पिता अन्धा हो गया। वे बड़े गरीब थे।

सारन्ग मेहनत मशक्कत करने जाता, जो कुछ कमाता, उससे खरीदकर, रोटियाँ बनाकर पिता को खिलाता, खुद खाता और जो कुछ बचता कौव्वों को दे देता।

सारन्ग के वे कौव्वें ही दोस्त थे। उन कौव्वों पर वह जान देता था। रोज भोजन के समय, वह अपने घर के बाहर बैठ जाता और दीवार पर बैठे कौव्वों को प्यार से देखता। खुद पेट-भर भी न खाता और उनको, अपना खाना बचाकर खिलाता था।

एक दिन सारन्ग ने जितनी रोटियाँ बनाई थीं उसका पिता ही खा गया था। न सारन्ग के लिए एक टुकड़ा बचा, न कौव्वों के लिए ही। उसे इस बात की चिन्ता न थी कि उसके लिए रोटी नहीं बची थी। पर उसे दुःख इस बात का था कि अपने कौव्वों को वह कुछ नहीं खिला पाया था।

जब वह बाहर आया, तो दीवार पर कौव्वों की पंक्ति बैठी थी। उसे देखते ही सारन्ग दुःखी हो उठा। उसने उन कौव्वों से कहा—"क्या किया जाय? आज तुम्हारे लिए खाना नहीं है।"

और कौव्वें भी इस तरह "का का" करके उड़ गये, जैसे उसकी बात समझ रहे हो।" थोड़ी देर बाद, एक कौव्वा

बाबूराम

राजधानी तक कैसे जा सकोगे? तुम इस गाँव के कोतवाल को इसे दे दो और उससे कह दो कि वह इसे राजा तक पहुँचा दे।"

सारन्ग कोतवाल के पास गया। राजमुद्रिका उसे देकर उसने यह भी बताया कि वह उसे कैसे मिली थी।

"राजमुद्रिका को चुरा लिया गया है और राजा की आज्ञा है कि वह जिसके पास मिले उसे पकड़ लिया जाये। इसलिए तुम्हें पकड़कर मुझे राजा के पास ले जाना होगा।" कोतवाल ने कहा।

अपनी चोंच में कुछ लाया और उसे सारन्ग के सामने फेंक कर चला गया। सारन्ग ने जब झुककर देखा, तो वह चकित रह गया। वह राजा की मुद्रिका की तरह थी। वह घबराता घबराता अन्दर गया। "पिताजी, इसे कौव्वों ने लाकर डाल दिया है। यह देखने में राजा की मुद्रिका मालूम होती है। क्या किया जाये?" उसने पिता से पूछा।

पिता ने घबराकर कहा—"राजा की मुद्रिका को एक क्षण भी पास नहीं रखना चाहिए। यह बड़ा अपराध है। तुम

कोतवाल ने दो सिपाहियों को बुलाया और सारन्ग के हाथ रस्सी से बँधवा दिये। "तुम इसे लेकर, राजधानी की ओर चलते चलो। मैं ज़रा दिन ढ़लने पर, घोड़े पर सवार होकर आऊँगा और तुम से आ मिलूँगा।"

वे अभी आधे रास्ते में थे कि सूरज ठीक सिर पर चढ़ आया। सिपाही एक तालाब के पास रुके। जो कुछ खाना वे साथ लाये थे, उन्होंने खाया। तालाब से, ठंडी ठंडी बयार आ रही थी। वे उस बयार में आराम से सो गये।

इतने में कहीं से कौव्वों का झुण्ड आया। दो तीन कौव्वे सारन्ग के पास आये। उसके हाथों पर बन्धी रस्सियों को खींच दिया। उसके बन्धन खोल दिये और जिस तरह चुपचाप आये थे, उसी तरह चुपचाप चले गये।

सारन्ग ने पहिले तो घर की ओर चला जाना चाहा। पर उसे लगा कि उससे कोई फायदा नहीं होगा। वह सड़क छोड़कर, पगडंडी से राजधानी पहुँचा। सीधे वह राजमहल में राजा के दर्शन के लिए गया।

सारन्ग ने राजा के सामने साष्टान्ग किया और उससे साफ साफ कह दिया कि एक कौव्वे ने लाकर, उसे मुद्रिका दी थी और उसने उसे कोतवाल को दिया था, जिसने उसे गिरफ्तार कर लिया था, पर कौव्वों ने उसे छुड़ा दिया था।

राजा ने सब सुनकर कहा—"कौव्वों ने जितनी तुम्हारी मदद की है, उसका सौवाँ हिस्सा भी, लगता है, आदमियों ने नहीं किया है।" कहकर, उसने अपने खज़ाने में से सौ मुहरें मँगवाकर, सारन्ग को दिलवाईं।

सारन्ग ने खुशी से आँसू बहाये। राजा से विदा लेकर, वह जा रहा था कि राजा ने उसे रोककर पूछा—"पर इतना धन लेकर कैसे जाओगे? ज़रा ठहरो। मैं कोतवाल को ही तुम्हारा अंगरक्षक बनाकर भेजूँगा।"

इतने में कोतवाल और दो सैनिक वहाँ पहुँचे। कोतवाल राजा की आज्ञा पर, राजा के पास आया और नमस्कार करके उसने निवेदन किया—"महाराज, मुद्रिका तो मिल गई है, पर चोर भाग गया है। उसे जल्दी ही पकड़कर...." वह अभी कह ही रहा था कि सारन्ग को वहाँ देखकर वह हकाबका रह गया।

"लगता है, तुम में कुछ भी ज्ञान नहीं है। मुद्रिका लाकर देने के लिए, लड़के को, इससे पहिले ही ईनाम मिल चुका है। इस लड़के को सुरक्षित घर तक पहुँचाने की जिम्मेवारी तुम पर है। कौन चोर नहीं है और चोर है। अगर तुम यह नहीं जान सकते, तो तुम कोतवाल होने लायक नहीं हो। फिर भी मैं इस बार तुम्हें माफ़ किये देता हूँ। जाओ।" राजा ने कहा।

राजा के दिये हुए पैसे से सारन्ग ने एक छोटा घर खरीद लिया और कुछ भूमि भी खरीद ली और अपने पिता के साथ आराम से रहने लगा। उसकी कहानी जल्दी ही सबको मालूम हो गई और लोग उसके घर को "कौव्वा घर" कहने लगे। उस पर हमेशा कौव्वे रहा करकेत और हर रोज उन्हें खूब खाना दिया जाता।

बातूनी बनवारीलाल

एक गाँव में एक "छः बातोंवाला" था। यह सुनकर कि पास के गाँव में "तीन बातोंवाला" था "छः बातवाला" उससे बात करके, तीन बातें बचाने की सोचकर, एक दिन घोड़े पर सवार होकर पास के गाँव गया।

रास्ते में एक खेत में तीन बातवाले का लड़का बनवारीलाल हल चला रहा था। उसने छः बातवाले से मिलकर, वह किस काम पर जा रहा था, यह मालूम कर लिया। बनवारीलाल ने सोचा कि उसे पिता के पास जाने नहीं दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से उसका पिता का छः बातवाले के सामने अपमान हो सकता था। इसलिए उसने कहा—"भाई, छः बातोंवाले। मेरे पिता, तीन बातवाले घर में नहीं है। "आकाश जब फूट पड़ा, तो वह खटमल की नस और लाल चींटी की खाल लेकर, बनिये के सुये से उन्हें सीने गया है।"

"जब लड़के की बातें ही इतनी बड़ी चढ़ी हैं, न मालूम इसका पिता कितना बड़ा होगा?" यह सोचकर छः बातोंवाला अपने गाँव चला गया। उस दिन रात को बनवारीलाल ने भोजन के समय पिता को बताया कि कैसे छः बातवाला आया था और कैसे उसने अपनी बातों से उसे डराकर, वापिस भेज दिया था।

तीन बातवाले को यह जानकर अपने लड़के पर बड़ा गुस्सा आया। जब वह रात को सो रहा था, उस गुस्से में

वह उसको खाट के साथ उठाकर गाँव के कुँये में फेंकने के लिए निकल पड़ा।

बनवारीलाल की नींद रास्ते में टूटी। वह पिता का उद्देश्य जान गया। रास्ते में बढ़ की लटकती जड़ पकड़कर वह पेड़ पर चढ़ गया। तीन बातोंवाला खाट को कुँयें में फेंककर, निश्चिन्त घर जाकर सो गया। जब वह सवेरे उठा, तो उसका लड़का घर के सामने पशुओं का किया हुआ कूड़ा कर्कट हटा रहा था।

"अरे, कुँए से बाहर कैसे निकले?" पिता ने बनवारीलाल से पूछा।

"मेंढ़क को लगाम लगाकर "लक लक" कहता ऊपर चला आया।" बनवारीलाल ने कहा।

अगले दिन जब बनवारीलाल सो रहा था, तो पिता उसको खाट के साथ उठाकर ले गया और दूर के तालाब में डाल आया। पर इस बार भी बनवारीलाल बढ़ की जड़ें पकड़कर पेड़ पर चढ़कर, बचकर अगले दिन सवेरे फिर घर में हाजिर हो गया।

"तालाब से कैसे बाहर आये!" पिता ने लड़के से आश्चर्य में पूछा।

"अक्ल हो तो यह कौन-सी बड़ी बात है? पानी के ऊपर आकर मैंने देखा कि तालाब के इस पार और उस पार खड़े होकर दो आदमी बात कर रहे थे। दोनों की बातों की ध्वनि की रस्सी बुनकर, किनारे पर चला आया।" बातूनी बनवारीलाल ने कहा। तीन बातवाले को, अपने लड़के की अक्लमन्दी देखकर बड़ी खुशी हुई। उसका उस पर गुस्सा भी जाता रहा। दोनों प्रेम से रहने लगे।

तीन देवता

एक राज्य में एक निर्जन प्रदेश में तीन देवताओं की मूर्तियाँ मिलीं। तीनों मूर्तियाँ एक ही तरह की थीं, मूर्तियों के पास से जो छोटे मोटे लोग गुजरते, उनको नमस्कार करके मन की इच्छाओं को व्यक्त करते। उनमें से एक मूर्ति जवाब देती।

"देवता बात कर रहे हैं जो कोई जो प्रश्न पूछता है, वे उसका उत्तर दे रहे हैं।" लोग आपस में कहने लगे।

यह बात मालूम होते ही राजा ने जहाँ वे मूर्तियाँ मिली थीं, वहाँ एक मन्दिर बनवाया। धर्मकर्ता को नियुक्त किया। जो देवताओं के दर्शन के लिए आते, उनसे कर लिया जाता, रोज हजारों रुपये इस प्रकार मिला करते। यात्री आ आकर देवताओं से प्रश्न करते और वे भी प्रति प्रश्न का उत्तर दिया करते। पर उनके उत्तरों में से कुछ तो ठीक निकलते, पर कुछ झूट होते।

धीमे धीमे यात्रियों की संख्या घटती गई और उसके साथ राजा की आय भी। राजा ने धर्मकर्ता को बुलाकर पूछा— "क्या कारण है कि देवताओं में लोगों का विश्वास कम होता जा रहा है?"

"महाराज! मुझे एक बात दीख रही है, तीनों देवता ईमानदार नहीं हैं। उनमें से एक ही ईमानदार है, सत्यवादी है। बाकी दोनों में एक तो निस्सन्देह झूटा है। तीसरा युक्तिवादी है। यानि, जो वह कहता है, सत्य भी हो सकता है और झूट भी।" धर्मकर्ता ने कहा।

सुब्रह्मण्यं

जो यह निर्णीत करेगा उसे एक जागीर ईनाम में मिलेगी।" राजा ने ठंढ़ोरा पिटवाया।

राजधानी से आकर कई लोगों ने प्रयत्न किया। पर कोई यह निर्णय न कर सका। एक दिन एक बूढ़े किसान ने आकर धर्मकर्ता के पास आकर कहा—"मैं बताऊँगा इन देवताओं की बात।"

दोनों मिलकर मन्दिर में गये। किसान ने पहिले देवता के पास जाकर पूछा—"आपकी बगल में जो देवता है,वह कौन है?"

"सत्यवादी देवता...." पहिले देवता ने कहा। फिर किसान ने दूसरे देवता के पास जाकर पूछा—"तुम कैसे देवता हो?"

"मैं युक्तिवादी हूँ।" दूसरे देवता ने कहा। किसान ने तीसरे देवता के पास जाकर पूछा—"तुम्हारे बगल में कौन-सा देवता है?"

"सत्यवादी देवता" तीसरे देवता ने कहा। किसान ने बाहर आकर धर्मकर्ता से कहा—"सबके बारे में मालूम हो गया है, चलिये राजा के पास।" धर्मकर्ता ने बताया कि उसे कुछ समझ में नहीं आया था।

दोनों मिलकर राजा के पास गये। किसान ने राजा से कहा—"महाराज!

"क्या तुम यह न जान सके कि उनमें कौन सत्यवादी है?" राजा ने पूछा।

"यही सम्भव नहीं है। महाराज! लोग देवताओं से बातें पूछने के लिए एक एक करके, अलग अलग जाते हैं। वापिस आकर, वे यह भी नहीं बताते कि उन्होंने किस देवता से क्या प्रश्न पूछा था। इसलिए किस देवता ने झूट बताया था, यह निर्णय करना मुश्किल हो रहा है।" धर्मकर्ता ने कहा।

"तीनों देवताओं में कौन सत्यवादी है, कौन असत्यवादी और कौन युक्तिवादी,

पहिला देवता युक्तिवादी है। दूसरा देवता असत्यवादी है और तीसरा देवता सत्यवादी।" कहकर उसने उन देवताओं से जो प्रश्न किये थे और उन्होंने जो उत्तर दिये थे, उनके बारे में बताया।

"इन उत्तरों से मुझे कुछ नहीं मालूम हो रहा है।" राजा ने कहा।

किसान ने इस प्रकार कहा।

"जरा ध्यान से सोचिये। पहिले देवता ने अपने बगलवाले देवता को सत्यवादी कहा। इसलिए पहिला देवता या तो, सत्यवादी होगा नहीं तो, असत्यवादी। नहीं तो, युक्तिवादी होगा। यदि वह सचमुच सत्यवादी है, तो दूसरे को सत्यवादी नहीं बतायेगा। तो दूसरा भी सत्यवादी नहीं है। यदि वह सत्यवादी है तो, अपने को युक्तिवादी कहना झूट होगा। इसलिए वह अवश्य असत्यवादी होगा। यदि वह वस्तुतः युक्तिवादी है, तो सच नहीं कहेगा कि वह युक्तिवादी है। यह भी कहा जा सकता है कि कभी कभी युक्तिवादी सच भी कह सकता है। पर तीसरा देवता सत्यवादी सिद्ध हो गया है। इसलिए उसके कहे अनुसार मध्य का देवता झूटा सावित होता है। इसलिए बीचवाला हो न हो असत्यवादी है। यानि इसका मतलब हुआ कि पहिला युक्तिवादी है। युक्तिवादी था इसलिए ही तो, बगलवाले को सत्यवादी कहकर उसने उस देवता को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया।"

राजा किसान की सूझबूझ देखकर बड़ा खुश हुआ और उसने उसको एक बड़ी जागीर ईनाम में दे दी।

स्तुति के योग्य

कुरु देश में एक बार बहुत बड़ा अकाल पड़ा। भूख के मारे वहाँ के लोग पेट को पकड़े पकड़े इधर उधर जाने लगे। इस तरह जानेवालों में चाक्रायण गोत्र का उषस्ति नाम का बड़ा ज्ञानी भी था। वह वेदों का रहस्य जानता था। वह अपनी पत्नी अटकी को साथ लेकर बहुत दूर चलकर एक गाँव में पहुँचा।

वहाँ एक महावत उबले चने खाता उषस्ति को दिखाई दिया। भूखे उषस्ति ने उसके पास जाकर कहा—"भाई, जरा मुझे भी ये चने दोगे?"

"ये जूठे हैं और तुम्हें देने के लिए मेरे पास और चने नहीं हैं।" महावत ने कहा।

"जूठे हैं, तो कोई बात नहीं, उन्हें ही मुझे दो।" उषस्ति ने कहा। महावत ने कुछ चने दे दिये। उनमें से कुछ उषस्ति ने खा लिये और कुछ अपने तौलिये में बाँध लिए।

महावत ने उषस्ति को अपने लोटे में से कुछ पानी देना चाहा। उषस्ति ने उसे लेने से इनकार करते हुए कहा—"यह जूठा पानी है, मुझे नहीं चाहिए।"

"मेरे चने तो तुमने खा लिए। वे भी तो जूठे थे।" महावत ने उषस्ति से अचरज से पूछा।

"अगर मैं इन चनों को नहीं खाता, तो मैं जिन्दा ही नहीं रहता। खाना कहीं नहीं मिल रहा है और पानी हर जगह मिल रहा है।" कहकर उषस्ति चला गया।

उसने उन चनों को ले जाकर अपनी पत्नी अटकी को दिये। उसे उस समय

भूख न थी। इसलिए उसने उनको रख लिये।

उषस्ति ने अगले दिन अपनी पत्नी से पूछा—"कुछ है खाने के लिए? अगर कुछ पेट में चला जाये, तो मैं काम करके कुछ कमा सकूँगा। पास में ही कोई राजा यज्ञ कर रहा है ऐसा सुना है।"

"कल जो आपने चने दिये थे, वे हैं, उन्हें खाकर, आप यज्ञ में चले जाइये।" अटकी ने अपने पति से कहा।

उषस्ति उन जूठे चनों को, जो बासे भी हो गये थे खाकर, यज्ञ स्थल पर गया। यज्ञशाला में जाकर वह बैठ गया। सामवेद के गायन के बाद, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता स्तोत्र शुरु करनेवाले थे।

उषस्ति ने प्रस्तोता को देखकर कहा—"तुम जिस देवता का स्तोत्र करने जा रहे हो, अगर तुमने उस देवता के बारे में बिना जाने स्तोत्र किया, तो तुम्हारे सिर के टुकड़े हो जायेंगे।"

उसने यही बात उद्गाता और प्रतिहर्ता से भी कही।
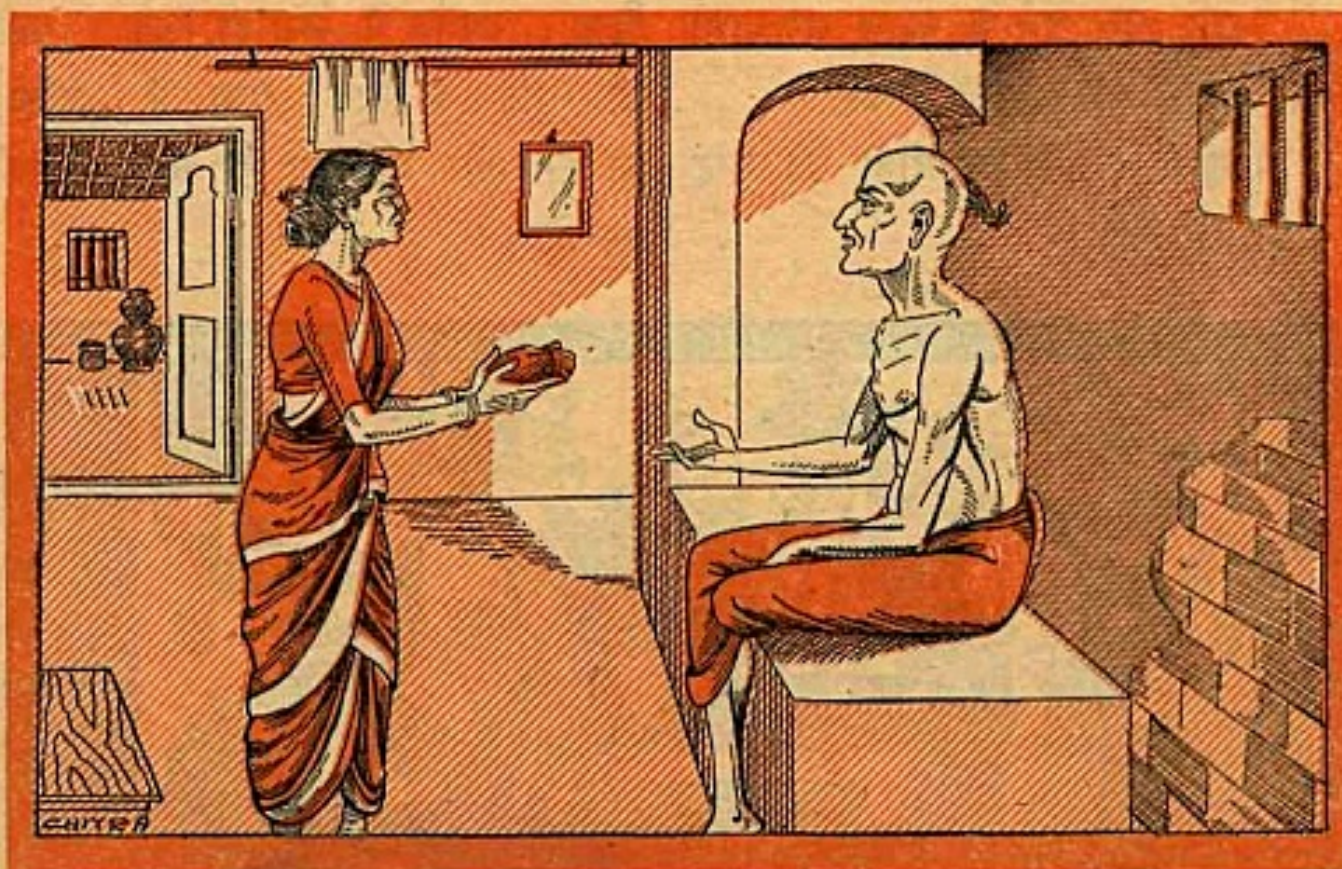
तीनों घबराकर एक दूसरे का मुँह देखने लगा।

फिर प्रस्तोता ने उषस्ति से पूछा— "कौन ऐसा देव है, जिसका कि मैं स्तोत्र करूँ? आपने कहा है कि बिना जाने यदि मैंने स्तोत्र किया, तो मेरे सिर के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे।"

"तुम्हारा स्तुत्य देवता है प्राण, सभी प्राणी, इस प्राण से पैदा होते हैं और इस प्राण में लय हो जाते हैं।" उषस्ति ने कहा।

फिर उद्गाता ने उषस्ति से पूछा— "मुझे किस देवता की स्तुति करनी चाहिए?"

"सूर्य, उस सूर्य के कारण सब प्राणी पैदा होते हैं।" उषस्ति ने कहा।

प्रतिहर्ता ने भी उन दोनों की तरह वे ही प्रश्न किये।

"तुम अन्न देवता की स्तुति करो। सब पाणी अन्न के कारण ही जीवित हैं।" उषस्ति ने कहा।

राजा, यह सम्भाषण सुन रहा था। उसने उषस्ति से पूछा—"आप कौन हैं, ज़रा हमें यह तो बताइये।"

"मेरा चाक्रायण गोत्र है और मेरा नाम उषस्ति है।" उषस्ति ने कहा।

"आपके बारे में मैं नहीं जानता था, इसलिए मैंने इस यज्ञ को करने के लिए औरों को नियुक्त कर लिया था। आप भी इससे मिलकर, इस यज्ञ का संचालन कीजिये।" राजा ने उषस्ति से निवेदन किया। उषस्ति ने वैसा ही किया। यज्ञ की पूर्ति के बाद राजा ने उषस्ति को भी और ऋत्विकों के साथ, समान धन दिया।

एक दिन कृष्ण, अपने पिता के यहाँ था कि उसे एक बात सूझी। उसके लोगों के लिए द्वारका नगरी तो बन गई थी परन्तु उनके जीवन को सुखमय बनाने के लिए आवश्यक साधन न बन पाये। इसलिए उसके शंखनिधि का स्मरण किया। तुरत शंखनिधि प्रत्यक्ष हुई। "स्वामी! क्या आपने मुझे याद किया है? आपकी जो भी आज्ञा होगी वह करूँगी।"

"निधि देवी! दरिद्र, शव के समान है। मैं अपने लोगों में दीन, अनाथ, दुखियों को नहीं देख सकता हूँ। यह देखो कि हर घर में सम्पत्ति और समृद्धि हो।" कृष्ण ने कहा।

"बहुत अच्छा।" शंखनिधि जाकर और आठ निधियों से मिली। उन्हें भी कृष्ण की इच्छा के बारे में बताया। तुरत द्वारका में नव निधियाँ आ बसीं। उस नगर में कोई भी गरीब न रहा।

इसी प्रकार कृष्ण ने एक बार वायु देवता का स्मरण किया। वायु देव आकर, कृष्ण को नमस्कार करके खड़ा हो गया।

"वायु देव! बल में तुम से बढ़कर कोई नहीं है। मेरा एक काम कर दो। इन्द्र के लिए विश्वकर्मा ने सुधर्म नाम की सभा बनाकर दी थी, हमारे यादवों के लिए भी एक सभा की जरूरत है। तुम इन्द्र से मेरी आज्ञा के बारे में

१६. रुक्मणी परिणय

बताकर, उसकी अनुमति से वह सभा मुझे लाकर दे दो।" कृष्ण ने कहा।

वायु देवता देवलोक गया। देवताओं से उसने कृष्ण की इच्छा के बारे में कहा। उनकी अनुमति पर, वह सुधर्म नाम का सभा भवन लाकर, कृष्ण को देकर चला गया।

इस प्रकार, कृष्ण ने समस्त लोकों से सर्वोत्तम वस्तुओं को लाकर द्वारका में रखवाये। कृष्ण ने स्वयं पर्यवेक्षण करते करते, मुख्य मुख्य कार्यों के लिए इस प्रकार व्यक्तियों की नियुक्ति की–राजा उग्रसेन था। काश्यय नाम का ब्राह्मण पुरोहित था। विकद्र मन्त्री था। शासन के विविध विभागों के संचालन के लिए दस यादव प्रमुखों को जो बहुत बुद्धिमान भी थे, नियुक्त किया। दारक कृष्ण का सारथी था। अस्त्र विद्या में द्रोणाचार्य के समान सात्यकी, सेनापति था।

इस प्रकार प्रजा के जीवन की व्यवस्था के बाद, द्वारका में हर वैभव था। वह भूलोक में स्वर्ग-सा बन गया। रैवत की रेवती नाम की सुन्दर लड़की थी। उसके साथ बलराम का विवाह हुआ। इसके बाद कृष्ण का विवाह हुआ। यह भी एक कथा है।

विन्ध्या के दक्षिण में विदर्भ देश है। वहाँ कुन्डिन नगर का भीष्मक नाम का राजा था। उसके रुक्मी नाम का लड़का था। यह रुक्मी बड़ा वीर था। उसने द्रुम राजा से बहुत-से अस्त्र और परशुराम से ब्रह्मास्त्र पाये थे। उसकी शुरु से कृष्ण से नहीं बनती थी।

उस रुक्मी की बहिन रुक्मणी थी। वह बड़ी तेजस्विनी और अत्यन्त सुन्दर थी। उसके सौन्दर्य की प्रसिद्धि

तीनों लोकों में फैली हुई थी। उसके बड़प्पन को तीन बातों में कहा जा सकता है। वह कृष्ण के प्रेम का पात्र बनी। मन्मथ उसके पेट से फिर पैदा हुआ। मुनीश्वरों ने उसकी देवी की तरह पूजा की और क्या कहा जाय?

कृष्ण ने अपने मित्रों को रुक्मणी के बारे में कहते सुना। उसी तरह रुक्मणी ने भी कृष्ण के बारे में पाँच दस के मुँह सुना। दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति प्रेम पैदा हुआ और यह प्रेम इतना प्रबल हुआ कि उनको विरह वेदना सताने लगी।

"कौन ऐसा है तीनों लोकों में जो जिस स्त्री को मैंने चुना है, उसे मेरी न होने दे?" कृष्ण इसी विश्वास में था और रुक्मणी के मन में सिवाय कृष्ण के कोई और बात न थी।

पर रुक्मी को कृष्ण बिल्कुल पसन्द न था। "जिसने नन्द के यहाँ गौव्वें चराई हों, भला हम उससे कैसे सम्बन्ध करें?" वह इस ख्याल में था।

इस बीच मगध देश के गिरिव्रजपुर से जरासन्ध ने खबर भिजवाई कि
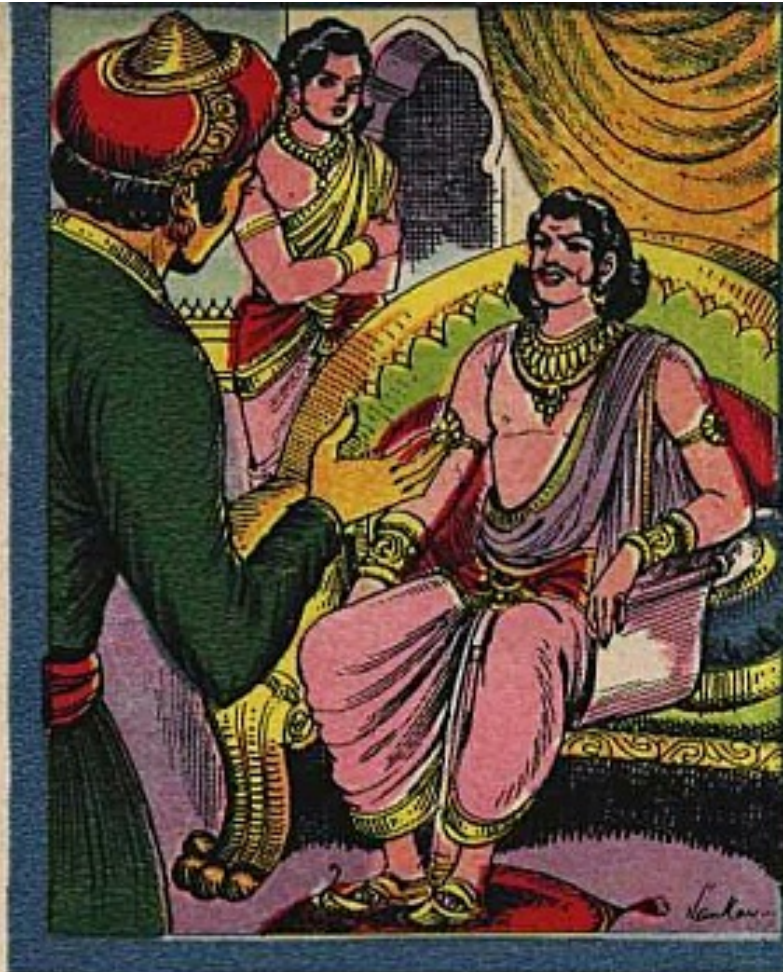
रुक्मणी का विवाह शिशुपाल के साथ किया जाय। शिशुपाल जरासन्ध का दत्तक-पुत्र था। वास्तव में उसका पिता दमघोष था। उसकी माँ वसुदेव की बहिन श्रुतश्रव थी। दमघोष और जरासन्ध सम्बन्धी थे। इसलिए दमघोष ने अपने लड़कों में से सबसे बड़े लड़के को जरासन्ध को गोदी में दिया। शिशुपाल का सुनिधु भी नाम है।

जरासन्ध ने जब यह खबर भेजी, तो रुक्मणी का पिता भीष्मक इस विवाह के लिए मान गया। पर भीष्मक मन

में चाहता था कि रुक्मणी का विवाह कृष्ण के साथ ही हो। पर वह जानता था कि रुक्मी की और कृष्ण की नहीं पटती थी। रुक्मी ने कहा कि उसकी बहिन का विवाह शिशुपाल के साथ ही होना चाहिए। चूंकि भीष्मक लड़के का विरोध नहीं करना चाहता था, इसलिए ही वह जरासन्ध का प्रस्ताव मान गया था।

प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर जरासन्ध ने अपने बन्धु मित्रों को निमन्त्रण भेजा। अंग, वंग, कलिंग, पौन्ड्र, पान्डच, काश, करूश आदि के राजा विवाह में उपस्थित होने के लिए निकल पड़े। शिशुपाल के साथ करूश का राजकुमार पौन्ड्रक वासुदेव, एकलव्य का लड़का वीर्यवन्त, दन्तवक्त का पुत्र सुवक्र आदि कई राजकुमार थे। इन सबको लेकर जरासन्ध कुन्डिन नगर पहुँचा।

रुक्मी कई रथों, हाथियों और घोड़ों को लेकर जरासन्ध की अगवानी करने गया। बरातियों के लिए उसने जनवास की व्यवस्था की।

मुहूर्त निश्चित करनेवालों ने आकर बताया कि अगले दिन ही शुभ लग्न था। तुरत यह बात सारे नगर में उद्घोषित कर दी गई। राजाओं ने अपने अपने पदों के अनुरूप अपनी सेनाओं का अलंकरण किया। शिशुपाल दुल्हा बनकर अपने साथ के राजकुमारों के बीच था।

और उधर द्वारका में नारद पहुँचा। गोरा शरीर, सुनहले रंग के बाल, शरीर पर चर्मवस्त्र, सिर पर मयूर के पंखों का छत्र, वायु के प्रवाह में बजनेवाली

तब नारद ने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया।

दक्षिण में समुद्र तट पर गोकर्ण नाम का महापुण्य क्षेत्र है। वहाँ शंकर दिव्य लिंग रूप में है। उस देवता के सामने वीणा बजाकर संकीर्तन करके, भक्ति से अर्चना करके, वहाँ से निकलकर कुबेर को देखने निकला। रास्ते में कुन्डिनपुर के राजा भीष्मक को देखा। उसने भी मेरा बड़ा आदर सत्कार किया। परन्तु वहाँ जरासन्ध आदि भूमि के सब राजा उपस्थित हैं। भीष्मक से मैंने पूछा कि वे सब वहाँ क्या कर रहे थे। उसने बताया कि अपनी लड़की रुक्मणी का चेदि देश के राजा शिशुपाल के साथ विवाह कर रहा है और वे उस विवाह में सम्मिलित होने के लिए आये हैं। कल सवेरे ही विवाह का शुभ मुहूर्त है। मैं बस यह खबर ही तुम तक पहुँचाना चाहता था।"

नारद ने यही भी बताया।

"तुम अपने मन में रुक्मणी को चाह रहे हो और वह भीष्मक उसको तुम्हारे शत्रु को दे रहा है और यह विवाह

तन्मय हो उठा। नारद ने जिस कृष्ण की प्रशंसा की थी, वह चूँकि उनका आत्मीय था इसलिए वे और भी प्रसन्न हुए। नारद ने वीणा जब बजाकर अलग रख दी, तो सब समाचार सुनने के लिए आतुर हो उठे।

तब कृष्ण ने नारद की ओर देखकर हँसते हुए कहा—"तुमने जो कुछ मैंने किया है, बिना किसी बात को छोड़े ही गा गाकर सुना दिया है। अब यह बताओ कि किस काम पर आये हो? तुम व्यर्थ तो आते ही नहीं हो।"

वीणा...यह सब द्वारकापुर के वासियों ने बड़े आश्चर्य से देखा।

यह खबर मिलते ही कि नारद आया है, उग्रसेन, वासुदेव, कृष्ण, बलराम आदि प्रमुख यादवों ने उसका स्वागत किया और उसे सुधर्म सभाभवन में ले गये। सोने के आसन पर बिठाकर उसका आदर सत्कार किया।

कृष्ण ने सबको बैठने के लिए कहकर और स्वयं बैठकर हाथ जोड़कर कहा—"नारद, तुम कुशल तो हो? सब लोक और देवता ठीक हैं न? तुम सब लोकों में स्वतन्त्र विचरते हो, भला तुमसे क्या छुपा है? पर एक बात साफ है कि तुम्हारे आने में अवश्य कोई न कोई उद्देश्य है। तुम जरूर हमारे यादव वंश की मदद करने आये हो। इसमें कोई सन्देह सहीं है कि हम यादव तुम्हारे आगमन से धन्य हैं।"

कृष्ण के ये प्रशंसा शब्द सुनकर नारद बड़ा खुश हुआ, उसने कहा।

"तुम्हारे चिन्तन मात्र से सब प्राणियों को कुशलता मिलती है। सब युगों में तुम्हारी चरण सेया करनेवाले मुझ जैसे

का कुशल अलग से क्यों पूछना? आपने अनुग्रह करके कहा है कि मेरे आने से आपका लाभ होगा। मैं धन्य हूँ।"

यह कहकर, नारद ने अपनी वीणा ठीक की। कृष्ण के मनोरंजन के लिए उसने उसे बजाया। मीनावतार से रामावतार की कथाओं को उसने गाकर सुनाया। फिर कृष्ण के बाल्य काल की क्रीड़ायें, पराक्रम, कालीयमर्दन, गोवर्धनोद्धारण, कंस बंध आदि के बारे में बहुत अच्छे गीत सुनाये। जिस जिसने उसका संगीत सुना, वह उसमें

निर्विघ्न हो रहा है। अगर यह हुआ, तो देखो...तुम्हारी कितनी बदनामी होगी। इसलिए तुम उग्रसेन महाराजा को साथ लेकर, सात्यिकी और शेष योद्धाओं को लेकर सेना के साथ अभी निकल पड़ो। वहाँ जाकर, वहाँ एकत्रित राजाओं को बुरी तरह पीटो और खुशी खुशी उस लड़की को ले आओ। जब तक तुम्हारे पास सुदर्शन चक्र है, तब तक तुम्हारे लिए असम्भव क्या है? एक और बात बताता हूँ, सुनो। जब मैं आकाशमार्ग से अदृश्य होकर जा रहा था, तब मैंने रुक्मणी को उद्यान में अपनी सखी सहेलियों के बीच रोते देखा था। वह तुम्हारे बारे में ही सोच रही है, तुम्हारे बारे में ही बात कर रही है। तुम्हें देखने के लिए वह छटपटा रही है। उसे कुछ और सूझता ही नहीं है। उसकी स्थिति बड़ी दयनीय है। रो रोकर उसकी हालत बुरी हो गई है। बाल बिखर गये हैं। माँग भी ठीक नहीं है। गले में एक ही एक माला है। ऐसी लग रही है, जैसे हर साँस के साथ उसके प्राण जा रहे हों। शरीर काँप रहा है। सखियाँ उसका उपचार कर रही हैं। पर कोई लाभ नहीं हो रहा है। वह कह रही है कि अगर किसी ने तेरे नाम के सिवाय किसी और का नाम लिया, तो वह मर जायेगी। सचमुच उसे देखकर पत्थर दिल भी पसीज उठेगा और तुम तो दयालु हो। तुम्हें कुछ न कुछ करना ही होगा। जैसे भी हो, उसकी रक्षा करो। रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है। तो मैं चला।"

यह कहकर नारद अपने रास्ते चला गया।
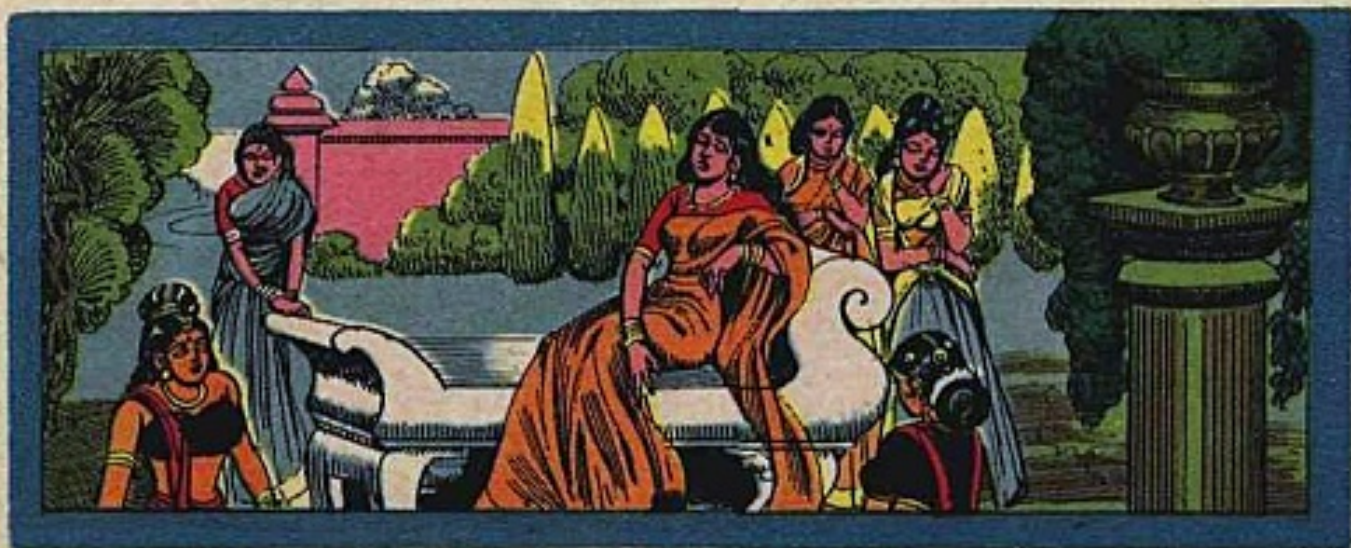
अरण्य पुराण

[१९]

बन्दर मौवली को खण्डहर ले जाकर बड़े खुश हुए। उन्हें मौवली के मित्रों का ख्याल नहीं आया।

मौवली ने कभी नगर नहीं देखा था। यद्यपि यह नगर पूरी तरह खण्डहर हो गया था, तो भी उसे देखकर वह बड़ा खुश हुआ।

बहुत साल पहिले एक महाराजा ने उस नगर को एक टीले पर बनाया था। नगर द्वार की ओर जानेवाले रास्ते के चिन्ह तब भी थे। यद्यपि किवाड़ टूट टाट गये थे। पर चौखट तब भी थे। पत्थर की दीवारों से पेड़ उग आये थे। बुर्ज की खिड़कियों से बेलें बाहर लटक रही थीं।

टीले पर जो राजमहल था, उस पर छत न थी। आँगन में संगमरमर के जो पत्थर लगे थे, वे टूट टाटकर लाल और भूरे रंग के हो गये थे। उन पत्थरों के बीच घास और पौधे उग आये थे। राजमहल के पीछे छत की नंगी दीवारोंवाले बहुत-से मकान थे। वे काले काले छत्ते से लगते थे। चौराहे पर एक टूटी फूटी मूर्ति थी। सड़क के किनारे जो कुँये थे, वे गढ़े से मालूम होते थे।

बन्दर उसे अपना नगर समझते और जंगल में रहनेवालों को नीची नजर से देखते। पर उनको न मालूम था कि ये घर क्यों बनाये गये थे और उनका

उपयोग कैसे करना चाहिए था। वे राजा के दरबार में चौकड़ी लगाकर बैठ जाते और ऐसा दिखाते, जैसे वे मनुष्य हों। नहीं तो बिना छत के घरों के अन्दर जाते, बाहर आते, पत्थर यहाँ जमा करके, वहाँ जमा करते और फिर भूल जाते। वे आपस में लड़ते झगड़ते, एक दूसरे पर धूल फेंकते, फिर राजा के बाग में जाते, वहाँ लगे फलों फूलों को तोड़ते और खुश होते। वे राजभवन के कोने कोने में घूमा करते। पर वे भूल जाते कि उन्होंने क्या कहाँ देखा था।
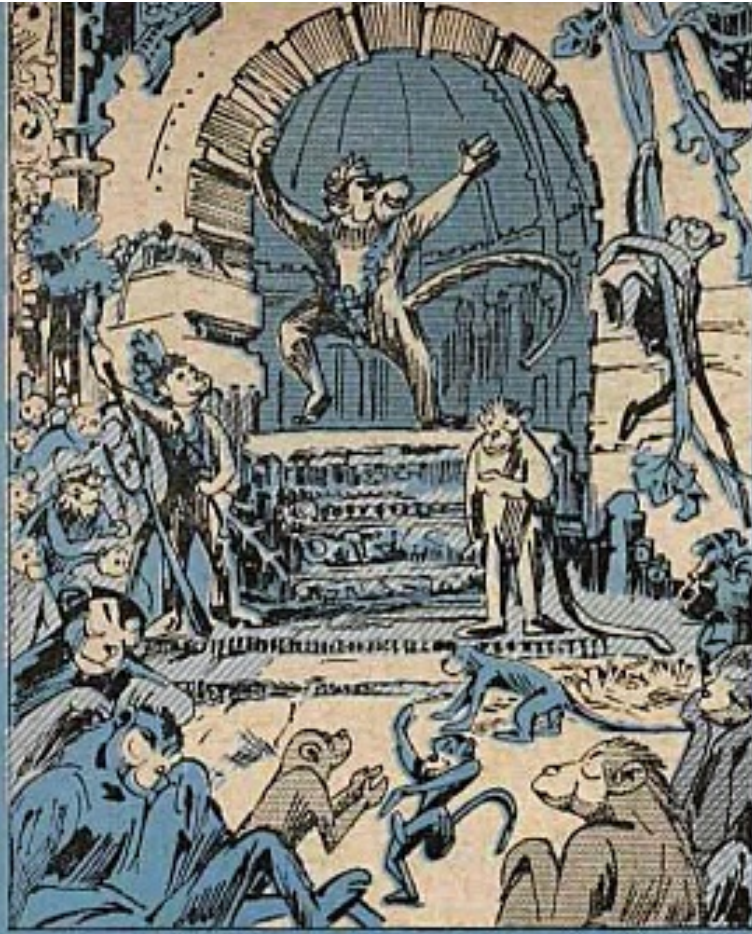
"हम बिल्कुल आदमियों की तरह जी रहे हैं न?" वे एक दूसरे से पूछा करते। वे गढ़ों में पानी में खेलते, पानी गन्दा करते और आपस में लड़ते। "बन्दरों में जितना विवेक है, जितनी अच्छाई है, बुद्धि है, बल है, उतना किसी और जंगल के प्राणी में नहीं है।" वे यह कहा करते और नगर के जीवन से जब वे ऊब जाते, तो वे वन के पेड़ों पर चले जाते। वन के प्राणियों की दृष्टि आकर्षित करने के लिए तरह तरह के कारनामे करते।

मौवली को, जो जंगल के जीवन से परिचित था, बन्दरों का यह जीवन न समझ में आया, न पसन्द ही आया। शाम के समय बन्दर मौवली को खण्डहरों के पास लाये। इतने लम्बे सफर के बाद उन्होंने उसको सोने भी न दिया। वे उसके चारों ओर खड़े हो गये और तालियाँ बजा बजाकर नाचने गाने लगे। एक बन्दर ने एक भाषण भी दिया। उसने कहा कि बन्दरों के इतिहास में मौवली का वहाँ उठाकर लाया जाना, सोने के अक्षरों में लिखा जाना चाहिए।

उसने कहा कि वह उन्हें बेल और बाँसों से चटाई बनाना सीखायेगा और हम उन्हें लगाकर वर्षा से बच सकेंगे।

मौवली ने कुछ बेलें लाकर, उन्हें बुनना सिखाया। बन्दरों ने भी उसकी देखा देखी, बुनना शुरु किया। परन्तु वे जल्दी ऊब गये। फिर वे एक दूसरे की पूँछ खींचा करते, "खो, खो" करके इधर उधर घूमा करते।

"मुझे भूख लग रही है। मैं यहाँ का जंगल भी नहीं जानता हूँ। या तो मेरे लिए खाना लाकर दो। नहीं तो मुझे शिकार करने के लिए अनुमति दो।" मौवली ने कहा।

उसके लिए फल फूल लाने के लिए बीस तीस बन्दर निकल पड़े। परन्तु वे रास्ते में ही लड़ पड़े और सब फल खराब कर दिये और जो फल खराब नहीं हुए थे, उनको लाना उनको ठीक नहीं जंचा।

मौवली को भूख के साथ गुस्सा भी आ रहा था। वह शिकार के लिए इधर उधर घूमता, खण्डहरों में फिरता रहा। पर उसकी आवाज का कोई जवाब नहीं मिला।

"इतनी खराब जगह कहीं न होगी! बन्दरों के बारे में भालू ने जो कुछ कहा था ठीक ही था। इनकी कोई परम्परा नहीं है। न शिकार के तौर तरीके ही हैं। न कोई सरदार ही है। बेमतलब की बातें हैं, हमेशा चोरी करते रहते हैं। अगर यहाँ भूखा मर गया या मार भी दिया गया, तो मेरी ही गलती है। जैसे भी हो, अगर मैं जंगल वापिस चला गया, तो बहुत अच्छा हो। भले ही भालू मुझे मारे पीटे।" मौवली ने सोचा।

वह अभी परकोटे तक ही गया था कि बन्दर उसे फिर पीछे घसीट लाये। "तुम अपना भला भी नहीं जानते।" उन्होंने उसे खरोंचा। मौवली ने दाँत पीसकर सब सह लिया।

राजमहल में एक संगमरमर का मण्डप था। सौ साल पहिले अन्तःपुर की स्त्रियाँ एक सुरंग से आती और चान्दनी में विहार करती। मण्डप के चारों ओर संगमरमर के तख्ते थे। उनकी दरारों में से चान्दनी आया करती। अब उस मण्डप की छत आधी गिर गयी थी और सुरंग आधी मूँद दी गई थी। बन्दर मौवली को यहाँ लाये और चिल्लाने लगे। "हम सब बड़े लोग हैं। हम ज्ञानी हैं। बलवान हैं। अच्छे हैं। हमारे पास से भागे जा रहे हो। हमारे बारे में तुम जंगल में औरों से कहो।"

"ऐसा लगता है, जैसे पागल लोमड़ी ने इन्हें काटा हो। ये पागल हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं। वह देखो, चान्द के ऊपर छोटा-सा बादल आ रहा है। अगर बड़ा बादल होता, तो मैं भाग निकलता।" उसने सोचा। (अभी है)

७३. "नागपुर"
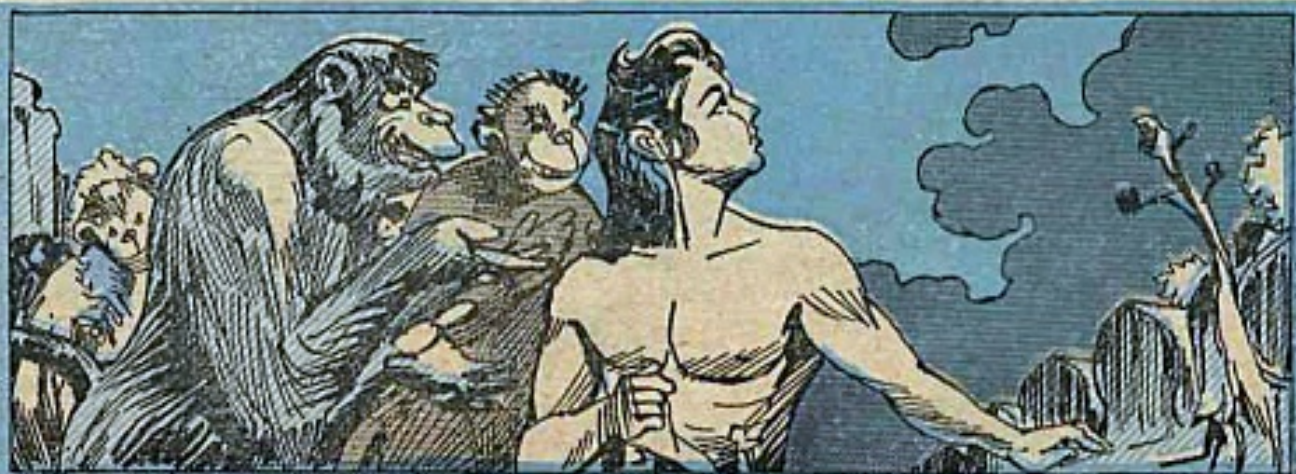
उत्तर अमेरिका के एरिजोना रेगिस्तान में ईसा से तीन शताब्दी पूर्व से होहोकाम नाम की जाति गिला नदी के तट पर "नागपुर" स्थापित करके, १२०० वर्ष वहाँ रहकर, अब निश्शेष हो गई है। इन्होंने प्रस्तर उपकरणों से ही एक सभ्यता का निर्माण किया। इन्होंने सिंचाई के लिए नहरें बनवाईं। खेती की। इनके कई शिल्प अभी हाल में मिले हैं।